युग सेतु

वर्ष 7 अंक 74 नवंबर-दिसंबर 2017

वेबसाइट : www.yugsetu.com
&
www.yugsetu.simplesite.com

संपादक
ओम प्रकाश शर्मा

कार्यालय
जी-21, प्रथम तल, लक्ष्मी नगर
दिल्ली-110092
दूरभाष-011-22040692

संपर्क कार्यालय
873, सेक्टर-21सी, हरियाणा-121001
दूरभाष-9013379808, 9650914297

ई.मेल : yugsetu@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक ओम प्रकाश शर्मा द्वारा, जी 21 लक्ष्मी नगर, दिल्ली से प्रकाशित एवं ग्राफिक प्रिंट, 383 एफ.आई.ई.पटपड़गंज इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली 110092 से मुद्रित।

अंदर के पन्नों में .....

संपादकीय (2)

ब्रह्मचर्य : एक अमोघ शक्ति (4)

मंथरा रंग ले चल वहाँ भुलावा देकर (5)

सोनपुर मेला अब वो बात कहाँ? (6)

यात्रा, पर्यटन व तीर्थाटन (7)

कुत्ता भौंकने लगा सौन्दर्य (8)

रसप्रिया (9)

मौत की घाटी में (13)

देह-धंधा व बलात्कार (19)

प्यार प्यार नहीं रहा (22)

युग सेतु में लेखकों के प्रकाशित आलेखों के विचारों से संपादक या प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
किसी भी विवाद का निबटारा दिल्ली न्यायालय में होगा।

सत्यांश

स्वदेशी का बदलता परिदृश्य

बौद्धिक जगत में भूमंडलीकरण और आधुनिकता एक समय वि ा में उपजी अवधारणा व्रोक है, पर वास्तव में यह सतत चलने वाली प्रक्रिया है। कभी-कभार यह धीमी ही नहीं, बिल्कुल रुक भी जाती है। समाज कभी पीछे की ओर अंधकार युग में जा-जी रहा होता है, तो कभी उत्तर आधुनिक तथा अत्याधुनिक भी कहलाता है। बीसवीं-इक्कीसवीं सदी में यातायात के तीव्रातितीव्र साधनों तथा दूरसंचार-जनसंचार माध्यमों के व्यापक विस्तार के साथ उन्मुक्त बाजार एवं अबाध व्यापार का रास्ता खुला है। बहुरा ट्रीय कंपनियों के उदय के अलावे उदारीकरण, निजीकरण, औद्योगीकरण, ाहरीकरण आदि प्रवृत्तियों की बुनियाद पर पूरा विव एक 'गाँव' का रूप लेता जा रहा है, जहाँ पूँजी और श्रम का आवागमन बढ़ा है। ज्ञान, सूचना, तकनीक, प्रौद्योगिकी आदि के आदान-प्रदान से परस्पर नजदीकी बढ़ी है।

असमानता के बावजूद रहन-सहन, खान-पान, पहनावे आदि में कुछ हद तक एकरूपता आई है। जल, जलवायु, पर्यावरण, परमाणु जैसे क्षे अंतर्रा ट्रीय चिंता के वि ाय बन गए हैं। भूकंप, अकाल, महामारी, नरसंहार, आतंकवाद जैसी विभीि ाकाएँ चाहे छोटी हों या बड़ी, वैविक दृि ट से ओझल नहीं रह पातीं। राजनीति, संस्कृति, ाासन पद्धति, ज्ञान इत्यादि पहले से ही वैविक संपदा हैं। इन सबकी वजह से सुदूर गावों-कस्बों तक के जनजीवन में काफी बदलाव आया है। यही वैवीकरण की प्रवृत्ति है। एंथनी गिड्डिंग ने लिखा है -'भूमंडलीकरण को सामाजिक संबंधों के विवव्यापी सघनीकरण के रूप में परिभाि ात किया जा सकता है, जो दूर-दूर स्थित स्थानीयताओं को आपस में जोड़ देता है। स्थानीयताएँ एक-दूसरे को प्रभावित भी करती हैं और उनसे प्रभावित भी होती हैं।' ऐसे में लोक जीवन और अनगढ़ स्थानीयताओं को बचाए रखने की चुनौती वास्तविक हो गई है। यह ठीक भी है, क्योंकि विक्टर ह्यूगो के ाब्दों में -'छवइवकल बंद ेजवच ंद पकमंूमद जपउम ीं बवउमण स्वदेशी की भी परंपरागत अवधारणा कई स्तरों पर भूमंडलीकृत हो गई है।

स्वदेशी आंदोलन एक ब हद राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जरूरत की वजह से भारत के स्वतंत्रता संग्राम का आध ाार-अस्त्र बना था। तब स्वदेशी की सोच वैकल्पिक नहीं, बल्कि उस समय की अनिवार्यता थी, अन्यथा इसके अभाव में असली अंतर-स्वातंत्र्य भाव के प्रस्फुटित होकर पूर्णरूपेण फलीभूत होने में मुकिलें आतीं। यह देावासियों में ऐक्य भाव व समानता के लिए भी जरूरी था। स्वदेशी आंदोलन के बड़े सूत्रधार महात्मा गाँधी का मानना था कि यदि किसी के अंदर स्वदेशी की भावना है तो वह अपनी बड़ी से बड़ी आवयकताओं की आपूर्ति स्वयं कर लेगा। भारत में जिन चीजों का भारी अभाव है, उन्हें बाहर से मँगाए जाने में गाँधी जी को आपत्ति न थी, बार्ते यह साबित हो जाए कि भारत अपने दम पर उन चीजों की पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ है। वे जीवन की सभी आवयकताओं की पूर्ति स्वयं करने को उपयोगी और जरूरतों को सीमित रखने को जरूरी मानते थे; स्वदेशी को स्वराज के लिए अनिवार्य कहते थे। उनके स्वदेशी दर्शन विराट थे, पर जमीनी धरातल पर आंदोलन के रूप में यह आरंभ में विदेशी वस्तुओं के बहि कार पर केंद्रित था। यह बहि कार भी उनकी होली जलाने और उन्हें छिन्न-भिन्न करने तक पहुँच गया। उस समय विदेशी ाासन से मुक्ति के लिए विदेशी चीजों से भी मुक्ति पाना चरम लक्ष्य था। स्वराज हेतु प्रतिबद्धता दर्शाने, जोा-उर्जा भरने व आत्मनिर्भरता के लिए यह जरूरी उपक्रम बन गया। इतना ही नहीं, यह धीरे-धीरे लोगों की रुचि, विवेक, सदाचार, सादगी, संयम, सभ्यता और संस्क ति की विरासत का प्रतीक बनता गया। भारत जो कुछ करने में समर्थ है, वह उसे करना चाहिए। यही नहीं, दुनिया में जहाँ कहीं जो कुछ उन्नत आवि कार-कार्य हो रहा है, वह सब स्वयं करने का सामर्थ्य अर्जित करना भी स्वदेशी भाव के अंतर्गत ही आता है।

बहरहाल, अब स्वदेशी के सरोकार काफी बदल गए हैं, इतने कि बहुत लोग उन्हें स्वदेशी की श्रेणी का मानेंगे ही नहीं, भले ही वे व्यवहार में उनसे परहेज कम करते हों। यहीं स्वदेशी के स्वरूप से लेकर औचित्य तक पर सवाल खड़ा होता है। प्रथमद ट्या ही स्प ट है कि जो अपने देा का है, वही स्वदेशी है और जो स्वदेशी है, वह स्वदेा का होगा ही। और स्वदेा? यह अमर कोा के अनुसार, हिमालय और विन्ध्य के बीच का भूभाग आयावर्त्त है -'आयावर्त्तः पुण्यभूमिः मध्यं विन्ध्य-हिमालयः।' संपूर्णतः इसी के प्रति प्रेम स्वदेा प्रेम है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय का मानना है कि 'स्वदेा के ाु और स्वदेशी के ाु में कोई अंतर नहीं है।' देा अपने स्वरूप भूगोल, भा ाा, संस्क ति, निवासियों, संप्रभु सरकार आदि से पहचाना जाता है। भौगोलिक सीमा जैसे लक्षण में बदलाव होने पर स्वदेा का भाग कभी परदेा, तो परदेा भी कभी स्वदेा बन जाता है; जैसे पाकिस्तान व बंगला देा कभी स्वदेा के हिस्से थे, पर आज परदेा हैं। फिर भी देा की सीमाएँ ही किसी काल में देा को सर्वाधि

ाक इंगित करती हैं, इसके बाद ही चाहे संस्क ति हो या भा ाा या फिर निवासी - ये सब द़ेा को पहचान देते हैं। फिर ये भ्रमित भी कर सकते हैं। स्वद़ेाी की भावना अपने आप में अमूर्त है, इसलिए द़ेा की एक-एक चीज के प्रति लगाव स्वद़ेाी है। यहीं अनेक बार ऐसी विकट स्थिति दिख जाती है कि चोट द़ेा की चीजों व कुव्यवस्था से मिलती है और प्रहार द़ेा को झेलना पड़ता है। यही कारण है कि स्वनामधन्य राहुल गाँधी भी जो राजनीतिक सत्ता के ाी र्ा पर रहे हैं, वे कह देते हैं कि 'यह कैसा द़ेा है!' द़ेा की कुप्रव त्तियों का बहुत ज्यादा.ािकार होने की द़ाा में सहसा ऐसा मुँह से निकल जाना अस्वाभाविक नहीं। दिखावटी ही सही, स्वद़ेा प्रेम का.ाि टाचार निभाना औपचारिक, अनौपचारिक बाध्यता है, इसे चिन्हित करना भी अपेक्षाक त आसान है, जबकि स्वद़ेाी की भावना रखने की न कोई बाध्यता है और न ही इसे चिन्हित करना आसान है। इसलिए आजकल बिना स्वद़ेाी भावना के भी द़ेा के प्रति प्यार उमड़ता देखा जा सकता है।

दुनिया की बहुत सारी चीजें अपने स्वरूप के कारण नहीं, अपितु दूसरों से अपने संबंधों के कारण अच्छी-बुरी कही जाती हैं। उसकी अच्छाई-बुराई हमेाा व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्क तिक, धार्मिक, आर्थिक परंपराओं व मान्यताओं के आधार पर ही तय होती है। बावजूद इसके, किसी विचार-द़र्ान का उत्क ट स्तर-रूप यही है कि उसे दूसरे से संबंधों के परिप्रेक्ष्य की बजाय अपने स्वरूप व गुण-दो ा वाले वै्ाि ट्य के आधार पर मूल्यांकित किया जाए। यहीं प्रन उठता है कि स्वद़ेाी की ग्राह्यता या त्याज्यता क्या केवल स्वद़ेाी होने के कारण तय हो सकती है? स्वद़ेाी का मतलब 'अपने द़ेा का' ही हो, तो इसका कोई खास महत्त्व नहीं, क्योंकि बहुत सारी चीजें गुणवत्ताविहीन होने के कारण अपने द़ेा की होकर भी स्वीकार्य नहीं हो सकतीं।

इसके बावजूद, एक स्तर पर स्वद़ेाी की भावना कभी निर्मूल्य नहीं हो सकती, क्योंकि यह कुछ हद तक ाावत मनोव त्ति और दीर्घकालिक विचार-भाव है। कुछ मूलभूत जीवन मूल्य जैसे भोग के लिए जीने की बजाय जीने लिए उपभोग, आत्मनिर्भरता, मि़ानरी कार्य-भावना, संयम व सादगी के सौंदर्यतत्त्व इसमें सदैव सन्निहित होते हैं, जिन्हें कभी झुठलाया नहीं जा सकता। स्वद़ेाी और परद़ेाी का अंतर 'स्व' और 'पर' के चिर विभेद का ही प्रन हैं। 'स्व' का विस्तार ही 'पर' का संकुचन है और 'पर' का विस्तार 'स्व' का सीमा निचित करता है। स्वद़ेाी अस्मिता का अस्तित्व परद़ेा के वजूद के समानांतर ही टिक पाता है, नहीं तो 'स्व' के अंतर्गत क्या नहीं आता? 'स्व' के अंतर्गत आने वाली चीजें कई बार इतनी दूर भी होती हैं, जितनी 'पर' वाली भी नहीं होतीं। सब कुछ अपना है और कुछ भी अपना नहीं है - यही जीवन का सार है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है -'मेरा घर सर्वत्र सभी स्थानों पर,/लक्ष्य वही है मेरे अन्वे ाण का;/मेरा द़ेा सभी द़ेाों में, मुझको/करना है संघ र्ा उसे पाने का।' इसलिए दुनिया में जहाँ कहीं भी उत्क ट और अद्भुत है, वह सब अंततः दुनिया की दौलत है। स्वद़ेाी का प्रन मानवहित और समाजहित से जुड़ा है। यहाँ जोर रोजगार पर नहीं रहता, बल्कि जीवनोपयोगी ब हतर कार्य पर रहता है, हालाँकि आजकल ऐसा-वैसा रोजगार-व्यवसाय ही सर्वोपरि है और वह भी सिर्फ और सिर्फ पैसा कमाने के लिए। दूसरी ओर, प्रेमचन्द के मतानुसार, 'जब तक मानव समाज के निर्माण का आधार 'संपत्ति' बनी रहेगी, उस समय तक अंतरा ट्रीयतावाद का आरंभ हो ही नहीं सकता।' यही कारण है कि एक तरफ नए-नए अकल्पनीय आवि कारों व कार्यों से दुनिया अभिभूत हो रही है, तो दूसरी तरफ बहुत सारे लोगों को बुनियादी चीजें मुहैया नहीं हैं।

पिछले दिनों घड़ी की बैट्री लगाने के सिलसिले में दूकानदार ने पूछा कि जापान वाली चाहिए या चीन वाली? हमने पूछा कि इंडिया में नहीं बनती क्या? तो बताया कि बनती है, पर उसकी कीमत इनसे दुगुनी-तिगुनी है, इसलिए रखते ही नहीं, कौन लगवाएगा उसे? जापान की अपेक्षा चीन वाली सस्ती है, पर अच्छी जापान वाली है। फिर हमने जापान वाली ही लगवाई। इसी प्रकार दिल्ली में निगम पा र्ाद का चुनाव लड़ चुके एक परिचित मित्र ने बताया कि उनकी बीमारी के समय इंजेक्ान दो-पौने दो लाख रुपए का लगता था, वह भी विद़ेा से मँगाया जाता था, क्योंकि यहाँ नहीं मिल पाता। अनेक लोग इलाज कराने विद़ेा जाते हैं और बहुत-सारे विद़ेाी अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगला द़ेा, नेपाल, म्यॉमार आदि द़ेाों से इलाज कराने भारत आते हैं, क्योंकि उन्हें गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सेवा मिलती है।

किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार के मूल्यांकन का पैमाना गुण-दो ा, गुणवत्ता तथा सुलभता ही होना चाहिए। बेहतरीन उत्पाद देने-लेने में बुराई नहीं है; एक दूसरे के ज्ञान से, खोज से, वस्तु व कार्य से लाभान्वित होना सबकी जिम्मेवारी है। जो जरूरी और ग्रहणीय है, उसे बाहर से भी लेने में हर्ज क्यों? बहरहाल, अब स्वद़ेाी की आकांक्षा का मतलब है कि व़िव में जहाँ कहीं जो कुछ श्रे ठ हो रहा है, उसे अपने यहाँ करने का सफल प्रयत्न करें। दुनिया को देखकर ही नहीं, बल्कि बहुत कुछ ऐसा यूनिक तथा मौलिक किया जाना चाहिए, जिसका अनुकरण बाकी दुनिया करे। इसी निक ा पर स्वद़ेाी चेतना का आकलन भी उपयोगी होगा कि कितना नव्यतम विद़ेाों से लेकर वजह-वेवजह यहाँ आत्मसात कराया जा रहा है और उसके बनिस्बत कितना नवीनतम आवि कार बाकी व़िव को दिया जा रहा है?

ब्रह्मचर्य : एक अमोघ शक्ति

❑ *आचार्य श्रीराम शर्मा*

न तपस्य इत्याहु ब्रह्मचर्य तपोत्तमम् ।
ऊध्वरिता भवेद्यस्तु स देवा न तु मानुषः ।।

अर्थात् जननेन्द्रिय-संयम द्वारा मनुष्य देवताओं के गुण को प्राप्त हो जाता है, उसकी दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास होता है।

'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है-ब्रह्म (अर्थात् परमात्म तत्त्व) में विचरण करना अर्थात् अपने मन-संयम, निग्रह, शुद्धाचरण द्वारा उसकी ओर मन, वचन, कर्म द्वारा अग्रसर होना। आज हम जीवन को इस उच्च भूमिका में तो नहीं उठा पाते, इसलिए 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ है- 'वीर्य रक्षा', जननेन्द्रिय का संयम, आत्मिक बल की वृद्धि। वीर्य की रक्षा करते हुए, वेदाध्ययन पूर्वक ईश्वर चिंतन करने का नाम ब्रह्मचर्य है। दूसरे शब्दों में जिसका वीर्य ऊध्वेरेता है- वह ब्रह्मचारी है, क्योंकि इन इन्द्रियों से अधिक चंचल जननेन्द्रिय का संयम सबसे अधिक कठिन है। ब्रह्मचर्य वह तप है, जिसके द्वारा ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है। यह एक प्रकार का व्रत है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा कर उच्च ईश्वरीय जीवन की साधना और तदनुसार वृद्धि का विकास करना पड़ता है। शुद्धाचरण द्वारा वीर्य की मन, वचन, कर्म द्वारा रक्षा करते हुए शास्त्रों में वर्णित सात्विक जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य है।

भगवान् शंकर कहते हैं कि 'ब्रह्मचर्य' अर्थात् वीर्य धारण करना, उसकी रक्षा करना ही उत्कृष्ट तप है। इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी कोई हो नहीं सकती। अखण्ड वीर्य को धारण करने वाला पुरुष इस लोक में प्रत्यक्ष देवता ही है। ब्रह्मचर्य से बुद्धि प्रखर होती है, इन्द्रियाँ अंतर्मुखी हो जाती हैं, स्मरण शक्ति तीव्र होती है, मनन शक्ति बढ़ जाती है, चित्त में एकाग्रता आती है, आत्मिक बल बढ़ता है, आत्म-निर्भरता, साहस, निर्भीकता आदि देव-दुर्लभ गुण स्वतःप्रसूत हो जाते हैं। विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य के पालन से शरीर, मन और आत्मा दृढ़ होती है। ऋषियों के अनुसार सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति का मूल ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य पालन से सुख, आरोग्य और तेज बढ़ता है, बल और वीर्य में वृद्धि होती है, स्वास्थ्य और दीर्घायु मिलती है, हमारा सुख, तेज, विद्या, बल, सामर्थ्य सब ब्रह्मचर्य पर ही आश्रित हैं।

शास्त्र कहता है-'जिस प्रकार समुद्र को पार करने का नौका उत्तम उपाय है, उसी प्रकार इस संसार से पार होने का उत्कृष्ट साधन ब्रह्मचर्य है। जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या करते हैं और उत्तम विद्या एवं ज्ञान से अपने मन को पवित्र बना लेते हैं, वे संसार के समस्त दुखों, कठिनाइयों को पार कर जाते हैं। महान् परिश्रमपूर्वक वीर्य का साधन करने वाले ब्रह्मचारी के लिए इस पृथ्वी पर भला किस कार्य में सफलता नहीं मिलती ? ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य ईश्वर के तुल्य हो जाता है। 'ब्रह्मचर्य परंतपः' अर्थात् ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ तपश्चर्या है। एक ओर चारों वेदों का फल और दूसरी ओर ब्रह्मचर्य का फल विशेष है।'

स्वामी सत्यदेव जी ने लिखा है-'वीर्य' शब्द में जादू भरा है। इसके उच्चारण करने से श्रेष्ठ और सात्विक भावों का संचार होने लगता है। ईश्वर वीर्यवान् है। रामचन्द्र जी बड़े तपस्वी वीर्यवान् राजा थे, भीष्म ने आयु भर वीर्य का संचय कर ब्रह्मचर्य धारण किया। इसी के प्रताप से भीष्म में इच्छा-मृत्यु की शक्ति थी। वीर्य रक्षा ही संजीवनी है। शिवजी और शुक्राचार्य के ज्वलंत उदाहरण हमें उपलब्ध हैं। श्री हनुमान जैसे ब्रह्मचर्य बल, स्फूर्ति और पुरुषार्थ आज भी विस्मय का प्रश्न बना हुआ है। संसार में वीर्यवती जाति ही अपना साम्राज्य स्थापित कर सकी है।

संसार में जो कुछ भी निरोग, सुन्दर, रूपवान, कांतिमय, मनोहर है, जो कुछ वीरता, ओज, पराक्रम, पौरुष, तेज, विशेषणों से प्रकट होता है तथा धैर्य, निर्भीकता, बुद्धिमत्ता, सौम्यता, मनुष्यत्व आदि गुणों से जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे सब वीर्य शब्द के अन्तर्गत हैं। जैसे सूर्य संसार को प्रकाश देता है, वैसे ही वीर्य मनुष्य, पशु-पक्षी और वृक्षों में अपना प्रभाव दिखाता है। जिस प्रकार सूर्य रश्मियों से रंग-बिरंगे फूल विकसित होकर प्रकृति का सौन्दर्य बढ़ाते हैं, इसी प्रकार वह वीर्य भी अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में अपनी प्रभा की छटा दिखाता है।

संसार वीर्यवान के लिए है। वीर्यवती जातियों ने संसार में राज्य किया और वीर्यहीन होने पर उनका नामोनिशान मिट गया। जिन मुसलमान वीरों ने अपनी चमकती हुई तलवार से यूरोप, एशिया में बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किये थे, वे व्यभिचार आदि दोषों में फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठे। जिन महाराष्ट्र के शूरवीरों ने मुसलमानी राज्य को छिन्न-भिन्न कर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित किया था, वे ही विषय-भोग, परस्पर की फूट तथा कलह के कारण अपनी सब आशाओं पर पानी फेर बैठे। यूरोप की बड़ी-बड़ी जातियों का इतिहास भी इसी वीर्य महिमा को बतलाता है। यूरोप की जिस स्पेन जाति ने नई दुनियाँ में अपनी विजय-पताका उड़ाई थी, वहीं स्पेन समृद्धिशाली होने पर विषय-भोग का शिकार बन गया और अपने उपनिवेशों को वीर्यहीनता के कारण खो बैठा।

नित्य प्रति की जीवन में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य धारण का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है। वीर्यहीन डरपोक, कायर, दीन-हीन, रोगी और दुर्बल होता है। जिस व्यक्ति के शरीर में वीर्य नहीं है, वह जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि वीर्य की एक बूँद नष्ट करना मृत्यु की एक बूँद धारण करना है। वीर्यवान पुरुषार्थी होता है। साहस और हिम्मत से बोल सकता है, कठिनाई का मुकाबला कर सकता है। वह उत्साही, सजीव, शक्तिशाली और दृढ़ निश्चयी होता है। उसे रोग नहीं सताते, वासनाएँ चंचल नहीं बनातीं, दुर्बलताएँ विवश नहीं करतीं। वह प्रभावशाली व्यक्तित्व प्राप्त करता है और दया, क्षमा, शांति, परोपकार, भक्ति, प्रेम, वीरता, स्वतंत्रता, सत्य द्वारा पुण्यात्मा बनता है। ✱

कैलाशपति मिश्र

मंथरा रंग

सूर्य किरण में सप्त रंग
पर राजनीति में कितने रंग
यही रंग है जिस कारण
चंचला थिड़कती मद में
रुदन हास्य दोनों को
आंचल में लिए चला करती।।

राज्याभिषेक के निर्णय से
खो गई निशा सुस्वप्नों में
पर कोपभवन की शक्ति को
पहले किसने नापा था।
उभरे उल्लास जिस कारण
बदले कोलाहल क्रंदन में
इन रंगों को कौन गिने
कैसे अपने को थामें।

कर्मों का है अलग रंग
भावों का भी है अपना रंग
आवेश और चिन्ताओं का
एक नहीं अनगिनत रंग।
सब रंगों में एक रंग
मंथरा समझ में आती
सभी युगों में यह तो
अपना अस्तित्व जताती।

रावण ने जिसको ललकारा
वह समझ नहीं क्यों पाया
निज नयनों से देख रहा
यमदूत निकट पल-पल है।
समझाया जितनों ने
वह और नहीं थम पाया
हुआ वही जो होना था
इसका भी अपना रंग है।

राजभवन से सचिवालय
रंगों का तार बिछा है
दिल्ली रंगों से दूर नहीं
मंथरा रंग उभरा है।
एक और अभी बाकी है
देखना उसे निश्चित है
सब रंगों को देख रहा
निष्कर्ष निकलना बाकी है।।

जयशंकर प्रसाद

ले चल वहाँ भुलावा देकर

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक! धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी-
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।
जहाँ साँझ सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो
ताराओं की पाँति घनी रे।
जिस गंभीर मधुर छाया में-
विश्व चित्रपट चल माया में-
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुःख-सुख वाली सत्य बनी रहे।
श्रम-विश्राम क्षितिज-बेला से
जहाँ सृजन करते मेला से -
अमर जागरण उषा नयन से -
बिखराती हो ज्योति घनी रे।

सोनपुर मेला अब वो बात कहाँ?

❐ उमेश प्रसाद सिंह

मेला का अर्थ है बहुत लोगों का एक साथ मिलना। हमारे देश में प्रतिवर्ष सैकड़ों मेले लगते हैं। सोनपुर में हरिहर क्षेत्र का मेला, पुरी में जगन्नाथ जी का मेला, कुरुक्षेत्र का मेला, वटेश्वरनाथ का मेला और अब प्रयाग में कुंभ का मेला लगने वाला है। ऐसी मान्यता है कि देश भर में प्रत्येक छह कोस के पश्चात् एक मेला लगता है। इनमें कुछ मेले ऐसे हैं जिन्हें देशव्यापी ख्याति प्राप्त है। सोनपुर का हरिहर क्षेत्र मेला सबसे प्रसिद्ध है। यह मेला इस वर्ष कार्तिक पूर्णिमा 26 नवंबर से शुरू होकर 25 दिसंबर को समाप्त हुआ है। पटना से उत्तर में गंगा और गंडक के संगम पर सोनपुर स्थित है। बिहार का यह सबसे पुराना मेला है। इसकी गिनती दुनिया के बड़े मेलों में होती है। हिन्दू लोग इस स्थान को हरिहर क्षेत्र कहते हैं। पुराणों में यहाँ की गज और ग्राह की लड़ाई प्रसिद्ध है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि प्राचीन काल में त्रिकूट पर्वत के चारों ओर एक बहुत बड़ा जलाशय था। उस जलाशय में एक विशालकाय ग्राह (मगर) रहता था। एक दिन एक गजराज अपने झुण्ड के साथ वहाँ पानी पीने आया। ग्राह ने उस गज को पकड़ लिया। दोनों में भयंकर लड़ाई हुई। जब गज हारने लगा तो उसने भगवान हरि (विष्णु) की प्रार्थना की। हरि ने हर (महादेव) आदि देवों के साथ पहुँचकर अपने सुदर्शन चक्र से गज की रक्षा की। तब से यह स्थान हरिहर क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सोनपुर नई दिल्ली-बरौनी रेल लाइन का एक बड़ा जक्शन है। यहाँ बिहार का सबसे पुराना रेलवे पुल है। गंडक नदी पर बने इस पुल की लंबाई 2.176 फीट है। इस पुल का उद्घाटन तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरीन ने 28 जनवरी, 1887 ई. को किया था।

नारद पुराण के अनुसार, भगवान विष्णु, नंदी वृषभ के नेतृत्व में गौओं को यहाँ हाँक कर लाए थे। इसीलिए यहाँ आज तक पशुओं का मेला लगता है। एक समय था जब सोनपुर का मेला, मीलों तक फैला हुआ था। यहाँ के जानवरों के बाजार में एक से एक बढ़कर घोड़े, हाथी, भैंस, गायें, बैल, बकरी, बिल्ली, कुत्ते आदि देश भर से आते थे। यहाँ एक दिन में लाखों का व्यापार होता था। यहाँ के बड़े मैदान में घुड़दौड़ हुआ करती थी, जिसे देखने के लिए काफी दूर से लोग आते थे। इस वर्ष पशुओं के मेला में रौनक नहीं थी। पहले यहाँ पशु हजारों की संख्या में बिक्री के लिए आते थे। इस बार उनकी संख्या लगभग पाँच सौ थी। जब पशु अवैध तरीका से तस्करों व चोरों के माध्यम से कटने के लिए बांग्लादेश जाएँगे तो यहाँ के मेलों में कहाँ से आएँगे?

पचास वर्ष पहले यहाँ का मीना बाजार काफी मशहूर था। यहाँ दुनिया के हर पदार्थ बिक्री के लिए उपलब्ध थे। चिड़िया बाजार में देश-विदेश के पक्षी आते थे। नखासा बाजार में तवायफों का कैंप लगता। परंतु कुछ वर्ष पहले तक बिहार में जो अराजकता थी, उसके कारण ये सब कुछ उजड़ गया। अंग्रेजी राज्य के समय मेला शुरू होने से पूर्व सड़कों का निर्माण होता था। दिन में दो बार उन पर इत्र और पानी का छिड़काव होता था। इस वर्ष मेलों में सड़कों पर अतिक्रमण, बिजली का संकट, सफाई की कमी, शराब की बिक्री से हाहाकार मचा हुआ था।

इसी सोनपुर में आज से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व लॉर्ड रिपन और नेपाल के राजा जंग बहादुर में भारत नेपाल मैत्री की संधि हुई थी। सोनपुर के संगम पर ही अकबर के सेनापति टोडरमल और बिहार के विद्रोही शासक दाउद खाँ के बीच युद्ध हुआ था। इस युद्ध में गंडक नदी का पानी रक्त से लाल हो गया था।

मान्यता है कि महर्षि विश्वामित्र के साथ बक्सर से जनकपुर जाते समय राम-लक्षमण यहाँ पधारे थे। आज भी कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहाँ लाखों स्नानार्थियों की भीड़ होती है। परंतु अब यह मेला नहीं, बल्कि छोटा सा बाजार बनकर रह गया है, जहाँ कुछ मामूली दुकानें और सरकार के सूचना विभाग के स्टॉल लगते हैं। सोनपुर का यह मेला कभी बिहार का गौरव था। आज इसकी हालत देखकर अंग्रेजी के महाकवि वर्डस्वर्थ का यह कथन याद हो आया है - 'हम इंसान हैं और हमारे लिए स्वाभाविक है कि जो चीज कभी बहुत बड़ी रही हो, उसके मिट जाने पर हम हार्दिक वेदना का अनुभव करें।'✷

यात्रा, पर्यटन व तीर्थाटन

लोग चाहे पर्यटन, तीर्थाटन न कर पाते हों, पर उन्हें छोटी-बड़ी यात्रा करनी ही पड़ती है। बिना कहीं आए-गए अपनी जरूरत कहाँ पूरी होती है। यह आदमी के दायरे के अनुरूप बहुत छोटी व सीमित हो सकती है और विस्तृत भी। जो जितना सुख-सुविधाओं की वजह से बड़ा है, उसकी यात्रा भी उतनी ही भौतिक रूप से बड़ी होती है और इन यात्राओं में मनोरंजन, पर्यटन की उतनी ही प्रचुर संभावना होती है। मध्यम व निचले वर्गों के लोगों की यात्रा सामान्यतः अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है। इससे इतर अभी भी 'धर्म' के प्रति लोगों में अन्य चीजों की बनिस्पत विश्वास अधिक है, अतः अनेक मुसीबतों के बावजूद भी अपनी जरूरतों में कटौती करके तीर्थयात्रा की जाती है। ज्यादातर पर्यटक-स्थल धर्म से किसी-न-किसी रूप में जुड़े हैं या जोड़ दिए गए हैं। इसलिए पर्यटक स्थल कमोवेश तीर्थस्थल भी हैं। धर्म-मंदिरों के कारण लोग सुदूर गाँव-देहात, पहाड़ों, निर्जन स्थानों तक पहुँचते हैं। संपन्न वर्ग ही दर्शनीय स्थानों पर जाकर मनोरंजन कर पाता है। जब जरूरत से आगे बढ़कर मनोरंजन का भाव भी समाहित हो तो वह पर्यटन का रूप ले लेता है और जब इसमें ईश्वर, धर्म, अध्यात्म, पुण्य, स्वर्ग, मोक्ष जैसी चीजें शामिल हो जाती हैं तो वह तीर्थयात्रा बन जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ यात्राएँ विशुद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु होती हैं अथवा साहस और जोखिम से भरी होती हैं। इस यात्रा का वैज्ञानिक खोज एवं भौतिक दृष्टि से बहुत महत्त्व होता है।

यात्रा, पर्यटन, तीर्थाटन बहुत कुछ पर्याय होकर भी अलग-अलग हैं। किसी भी छोटे से छोटे लक्ष्य की ओर चलना यात्रा है, पर पर्यटन सामान्यतः अपने निवास से दूर फुर्सत में मनोरंजन के क्षणों का आनंद है। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक परिवेश की जानकारी और उनका आदान-प्रदान होता है। विकास, सुख-शांति और जिज्ञासाओं के निवारणार्थ यह होता है। इसलिए संत आगस्टिन ने बिना विश्व-दर्शन के ज्ञान को अधूरा बताया है। लेकिन विश्व का प्रत्यक्ष दर्शन समय एवं साधन की भरपूरता की माँग करता है। आजकल संचार माध्यमों द्वारा एक कमरे में ही बहुत सारी जानकारी उपलब्ध हो गई है, फिर भी जितना अधिक संभव हो, बाह्य वातावरण को प्रत्यक्ष देखने से 'कूपमंडुपता' से मुक्ति मिलती है। पर्यटन को उद्योग का दर्जा दिया गया है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए अनेक उपाय किए गए हैं, इसलिए आज का पर्यटन अनेकआयामी हो गया है। यह स्थानीय, घरेलू, प्रांतीय, राष्ट्रीय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय ही नहीं, अंतरिक्ष तक विस्तृत है। इनमें मनोरंजन से लेकर ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान सहित सृजनात्मक पर्यटन भी सम्मिलित हैं। सामूहिक रूप में ही नहीं, अकाल-पीड़ित, युद्ध विभीषिका झेले, आपदागस्त लोगों के बीच जाना भी पर्यटन जैसा है। विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटन के क्षेत्र में वार्षिक औसत वृद्धि 4% तक है। यह राज्यों-राष्ट्रों के लिए आर्थिक विकास दर बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम है। फीजी जैसे देशों में अर्थव्यवस्था का यह प्रमुख आधार है। यह ऐसा सेवा उद्योग है जो दूर-दराज के क्षेत्रों, पहाड़ों तक में रोजगार का अवसर मुहैया कराता है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान लगभग 6% के आस-पास है। लेकिन दुर्भाग्यवश विश्व के पिछले वर्षों में सर्वाधिक घूमे गए 10 पर्यटक स्थलों में भारत का कोई भी पर्यटन-स्थल शामिल नहीं है। पर्यटक स्थलों पर जाने से लोक परम्परा, लोक-साहित्य, रीति-रिवाज, संस्कार, स्थापत्य कला, मौसम, वेश-भूषा, रहन-सहन से परिचय प्राप्त होता है, अपनी एकल दृष्टि से मुक्ति मिलती है। आजकल चिकित्सा, शिक्षा, सृजनात्मक कार्य, खेलकूद, वन्य प्राणी-पर्यटन से लेकर पॉप-संस्कृति व सेक्स पर्यटन तक रणनीति के तहत विकसित हो रहा है। ✱

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कुत्ता भौंकने लगा

आज ठंडक अधिक है।
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हप्ते पहले पाला पड़ा था -
अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,
हवा हाड़ तक बेध जाती है,
गेहूँ के पेड़ ऐंठे खड़े हैं,
खेतिहरों में जान नहीं,
मन मारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ
ऊपर से हवाबाज उड़ गया।
जमींदार का सिपाही लट्ठ कंधे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
''डेरे पर थानेदार आये हैं,
डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है,
एक हप्ते के अंदर देना है।
चलो, बात दे आओ।'
कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बन्धु खेतिहर को देख-देख कर।

जयशंकर प्रसाद

सौन्दर्य

नील नीरद देखकर आकाश में
क्यों खड़ा चातक रहा किस आश में
क्यों चकोरों को हुआ उल्लास है
क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है?
क्या हुआ जो देखकर कमलावली
मत्त होकर गूँजती भ्रमरावली
कंटकों में जो खिला यह फूल है
देखते ही क्यों हृदय अनुकूल है?
है यही सौन्दर्य में सुषमा बड़ी
लौह-हिय को आँच इसकी ही कड़ी
देखने के साथ ही सुन्दर वदन
दीख पड़ता है सजा सुखमय सदन।
देखते ही रूप मन प्रमुदित हुआ
प्राण भी आमोद से सुरभित हुआ
रस हुआ रसना में उसके बोलकर
स्पर्श करता हुआ हृदय को खोलकर।
लोग प्रियदर्शन बताते इन्दु को
देखकर सौन्दर्य के इक बिन्दु को
किन्तु प्रिय-दर्शन स्वयं सौन्दर्य है
सब जगह इसकी प्रभा ही वर्ण्य है।
जो पथिक होता कभी इस चाह में
वह तुरत ही लुट गया इस राह में
मानवी या प्राकृतिक सुषमा सभी
दिव्य शिल्पी के कला-कौशल सभी।
देख लो जी भर इसे देखा करो
इस कसम से चित्त पर रेखा करो
लिखते-लिखते चित्र वह बन जाएगा
सत्य सुन्दर तब प्रकट हो जाएगा।

रसप्रिया

❐ फणीश्वर नाथ रेणु

जैसे में पड़े कीमती पत्थर को देखकर जौहरी की आँखों में एक नई झलक झिलमिला गई-अपरूप-रूप।

चरवाहा मोहना छौंड़ा को देखते ही पंचकौड़ी मिरदंगिया के मुँह से निकल पड़ा-अपरूप-रूप।

...खेतों, मैदानों, बाग-बगीचों और गाय-बैलों के बीच चरवाहा मोहना की सुन्दरता।

मिरदंगिया की क्षीणज्योति आँखें सजल हो गईं।

मोहना ने मुस्कुराकर पूछा-'तुम्हारी उंगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हुई है, न?'

-ऐं! - बूढ़े मिरदंगिया ने चौंकते हुए कहा- रसपिरिया? ...हाँ... . नहीं। तुमने कैसे... तुमने कहाँ सुना बे....?

'बेटा' कहते वह रुक गया। ...परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेरकर मारपीट की तैयारी की थी - बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा? मारो, साले, बुड्ढ़े को घेरकर! ...मृदंग फोड़ दो!

मिरदंगिया ने हँसकर कहा था - अच्छा, इस बार माफ कर दो, सरकार! अब से आप लोगों को बाप ही कहूँगा।

बच्चे खुश हो गये थे। एक दो-ढाई साल के नंगे बालक की ठुड्डी पकड़कर वह बोला था - क्यों ठीक है न बापजी?

बच्चे ठठाकर हँस पड़े थे।

लेकिन इस घटना के बाद फिर कभी उसने किसी बच्चे को बेटा कहने की हिम्मत न की थी। मोहना को देखकर बार-बार बेटा कहने की इच्छा होती है।

-रसपिरिया की बात किसने बताई तुमसे?... बोलो, बेटा।

दस बारह साल का मोहना भी जानता है, पंचकौड़ी अधपगला है। ...कौन इससे पार पाए। उसने दूर मैदान में चरते हुए अपने बैलों की ओर देखा।

मिरदंगिया कमलपुर के बाबू लोगों के यहाँ जा रहा था। कमलपुर के नन्दू बाबू के घराने में अब भी मिरदंगिया को चार मीठी बातें सुनने को मिल जाती है। एक-दो भोजन तो बँधा हुआ है ही, कभी-कभी रस-चरचा भी यहीं आकर सुनता है वह। दो साल के बाद वह इस इलाके में आया है। दुनिया बहुत जल्दी-जल्दी बदल रही है। ...आज सुबह शोभा मिसर के छोटे लड़के ने तो साफ-साफ कह दिया - तुम जी रहे हो या थेथरई कर रहे हो, मिरदंगिया?

हाँ यह जीना भी कोई जीना है? निर्लज्जता है! और थेथरई की भी सीमा होती है। ...पन्द्रह साल से वह गले में मृदंग लटकाकर गाँव-गाँव घूमता है, भीख माँगता है। दाहिने हाथ की टेढ़ी उंगली मृदंग पर बैठती ही नहीं है, मृदंग क्या बजाएगा। अब तो, 'धा तिंग' भी बड़ी मुश्किल से बजाता है... अतिरिक्त गाँजा-भाँग के सेवन से गले की आवाज विकृत हो गयी है। किन्तु मृदंग बजाते समय विद्यापति की पदावली गाने की चेष्टा अवश्य करेगा। ...फूटी भाथी से जैसी आवाज निकलती है वैसी ही आवाज-सों-य....सों-य।

पन्द्रह-बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी। शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनैन, मुंडन-छेदन आदि शुभ कार्यों में विदपतिया मण्डली की बुलाहट होती थी। पंचकौड़ी मिरदंगिया की मण्डली ने सहरसा और पूर्णिया जिले में काफी यश कमाया है। पंचकौड़ी मिरदंगिया को कौन नहीं जानता। सभी जानते हैं, वह अधपगला है। गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं- अरे, पंचकौड़ी मिरदंगिया का भी एक जमाना था।

इस जमाने में मोहना जैसा लड़का भी है-सुन्दर, सलोना और सुरीला।

रसप्रिया गाने का अनुग्रह करता है - एक रसप्रिया गाओ न, मिरदंगिया। रसपिरिया सुनोगे, अच्छा सुनाऊँगा। पहले बताओ, किसने. ...?

-हे 'ए-ए,हे-ए... मोहना, बैल भागे....। एक चरवाह चिल्लाया- रे मोहना, पीठ की चमड़ी उधेड़ेगा, करमू।'

-अरे बाप! मोहना भागा।

कल ही करमू ने उसे बुरी तरह पीटा है। दोनों बैलों को हरे-हरे पाट के पौधों की महक खींच ले जाती है बार-बार। ...खटमिट्ठा पाठ!

पंचकौड़ी ने पुकार कर कहा - मैं यहीं पेड़ की छाया में बैठता हूँ। तुम बैल हाँककर लौटो। रसपिरिया नहीं सुनोगे?

मोहना जा रहा था। उसने उलटकर देखा भी नही।

रसप्रिया!

विदापत नाच वाले रसप्रिया गाते थे। सहरसा के जोगेन्दर झा ने एक बार विद्यापति के बारह पदों की एक पुस्तिका छपाई थी। मेले में खूब बिक्री हुई थी रसप्रिया पोथी की। विदापत नाच वालों ने गा-गाकर जनप्रिया बना दिया रसप्रिया को।

खेत के आल पर झरजामुन की छाया में पंचकौड़ी मिरदंगिया बैठा हुआ है। मोहना की राह देख रहा है।... जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करने वाले भी अब गीत नहीं गाते हैं। ... कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जाएगी क्या? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है। पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था। ...पहले वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे-भरे पौधों से एक खास किस्म की गंध निकलती है। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी - रस की डाली। वे गाने लगते थे बिरहा, चांचर, लगनी। खेतों में काम करते हुए गाने वाले गीत भी समय-असमय का ख्याल करके गाये जाते हैं। रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चांचर और लगनी-

'हाँ... रे, हल जोते हलवाहा भैया रे।...

खुरपी रे चलावे..... म-ज-दू-र।

एहि पंथे, धानी मोरा हे रूसली।'

खेतों में काम करते हलवाहों और मजदूरों से कोई बिरही पूछ रहा है, कातर स्वर में.... उसकी रूठी हुई धनी को इस राह से जाते देखा है किसी ने?

अब तो दोपहरी नीरस ही कटती है, मानो किसी के पास एक शब्द

भी नहीं रह गया है।

आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिहंकारी भरी - टिं... ई. .. टिं-हिं-क।

मिरदंगिया ने गाली दी - शैतान।

उसको छोड़कर मोहना दूर भाग गया है। वह आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा है। जी करता है, दौड़कर उसके पास चला जाए। दूर चरते हुए मवेशियों के झुंडों की ओर बार-बार वह बेकार देखने की चेष्टा करता है। सब धुंधला।

उसने अपनी झोली टटोलकर देखा-आम है, मूढ़ी है। उसे भूख लगी। मोहना के सूखे मुँह की याद आयी और भूख मिट गयी।

मोहना जैसे सुन्दर-सुशील लड़कों की खोज में ही उसकी जिन्दगी के अधिकांश दिन बीते हैं। ..... विदापत नाच में नाचने वाले नटुआ का अनुसंधान खेल नहीं। .... सवर्णों के घर में नहीं, छोटी जाति के लोगों के यहाँ मोहना जैसे लड़की-मुहां लड़के हमेशा पैदा नहीं होते। ये अवतार लेते हैं समय-समय पर, जदा-जदा हि....

मैथिल, ब्राह्मण, कायस्थों और राजपूतों के यहाँ विदापत वालों की बड़ी इज्जत थी। .... अपनी बोली-मिथिलाय - में नटुआ के मुँह से 'जनम अवधि हम रूप निहारल' सुनकर वे निहाल हो जाते थे। इसलिए हर मण्डली का मूलगैन नटुओं की खोज में गाँव-गाँव भटकता फिरता था - ऐसा लड़का, जिसे सजा-धजाकर नाच में उतारते ही दर्शकों में एक फुसफुसाहट फैल जाये।

-ठीक ब्राह्मणी की तरह लगता है। है न?

-मधुकान्त ठाकुर की बेटी की तरह...

- नः। छोटी चम्पा जैसी सूरत है।

पंचकौड़ी गुनी आदमी है। दूसरी-दूसरी मण्डली में मूलगैन और मिरदंगिया की अपनी-अपनी जगह होती। पंचकौड़ी मूलगैन था और मिरदंगिया भी। गले में मृदंग लटकाकर बजाते हुए वह गाता था, नाचता था। एक सप्ताह में ही नया लड़का भांवरी देकर परवेश में उतरने योग्य नाच सीख लेता था।

नाच और गाना सिखाने में कभी उसे कठिनाई नहीं हुई, मृदंग के स्पष्ट 'बोल' पर लड़कों के पाँव स्वयं ही थिरकने लगते थे। लड़कों के जिद्दी माँ-बाप से निबटना मुश्किल व्यापार होता था। विशुद्ध मैथिली में और भी शहद लपेटकर वह फुसलाता.....

'किसन कन्हैया भी नाचते थे। नाच तो एक गुण है। ... अरे, जाचक कहो या दसदुआरी। चोर, डकैती और आवार-गर्दी से अच्छा है अपना-अपना 'गुन' दिखाकर लोगों को रिझाकर गुजारा करना।'

एक बार उसे लड़के की चोरी भी करनी पड़ी थी.... बहुत पुरानी बात है। इतनी मार लगी थी कि... बहुत पुरानी बात है।

पुरानी ही सही, बात तो ठीक है। रसपिरिया बजाते समय तुम्हारी उंगली टेढ़ी हुई थी। ठीक है न?

मोहना न जाने कब लौट अया।

मिरदंगिया के चेहरे पर चमक लौट आयी। वह मोहना की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा... यह गुणवान मर रहा है। लाल-लाल ओठों पर बीड़ी की कालिख लग गयी है। पेट में तिल्ली है जरूर।

मिरदंगिया वैद्य भी है। एक झुंड बच्चों का बाप धीरे-धीरे एक पारिवारिक डॉक्टर की योग्यता हासिल कर लेता है।..... उत्सवों के बासीटका भोज्यान्नों की प्रतिक्रिया कभी-कभी बहुत बुरी होती। मिदंगिया अपने साथ नमक-सुलेमानी, चानमार पाचन और कुनैन की गोली हमेशा रखता था। पीपल, काली मिर्च, अदरक वगैरह को घी में भूनकर शहद के साथ सुबह-शाम चटाता।

-गरम पानी।

पोटली से मूढ़ी और आम निकालते हुए मिरदंगिया बोला-हाँ, गरम पानी। तेरी तिल्ली बढ़ गयी है। दवा....

आगे कहने की जरूरत नहीं। मिररदंगिया है। मिरदंगिया जानता है, मोहना जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है। क्या होगा पूछकर कि दवा क्यों नहीं करवाते?

-माँ भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज गरम पानी से तिल्ली गल जाएगी।

मिरदंगिया ने मुस्कुराकर कहा-बड़ी सयानी है, तुम्हारी माँ।

केले के सूखे पत्तल पर मूढ़ी और आम रखकर उसने बड़े प्यार से कहा -आओ, एक मुट्ठी खा लो।

-नहीं, मुझे भूख नहीं।

किन्तु मोहना की आँखों से रह-रहकर कोई झाँकता था, मूढ़ी और आम को एक साथ निगल जाना चाहता था.... रसपिरिया नहीं सुनोगे?

माँ के सिवा, आज तक किसी अन्य व्यक्ति ने मोहना को इस तरह प्यार से कभी परोसे भोजन पर नहीं बुलाया।..... लेकिन दूसरे चरवाहे देख लें तो माँ से कह देंगे।.... भीख का अन्न।

- नहीं, मुझे भूख नहीं।

मिरदंगिया ने मोहना जैसे दर्जनों सुकुमार बालकों की सेवा की है। अपने बच्चों को भी शायद वह इतना प्यार नहीं दे सकता।..... और अपना बच्चा। हूँ....। अपना-पराया? अब तो सब अपने सब पराये।. ....

- मोहना।

- कोई देख लेगा तो?

- तो क्या होगा?

- माँ से कह देगा। तुम भीख माँगते हो न?

'कौन भीख माँगता है?' - मिरदंगिया के आत्म-सम्मान को इस भोले लड़के ने बेवजह ठेस लगा दी। उसके मन की झाँपी में कुण्डली बन कर सोया साँप फन फैलाकर फुँफकार उठा-'ए स्साला। मारेंगे वह तमाचा कि....?

'ऐ! गाली क्यों देते हो। -मोहना ने डरते-डरते प्रतिवाद किया। वह उठ खड़ा हुआ, पागलों का क्या विश्वास।

आसमान में उड़ती हुई चील ने फिर टिंहकारी भरी- टिं हीं... ई. .. टिं-टिं-क।

-मोहना! मिरदंगिया की आवाज गंभीर हो गयी।

मोहना जरा दूर जाकर खड़ा हो गया।

-किसने कहा तुमसे कि मैं भीख माँगता हूँ? मिरदंग बजाकर, पदावली गाकर, लोगों को रिझाकर पेट पालता हूँ।.... तुम ठीक कहते हो, भीख का ही अन्न है यह। भीख का ही फल है यह।..... मैं नहीं दूँगा।..... तुम बैठो, मैं रसपिरिया सुना दूँ।

मिरदंगिया का चेहरा धीरे-धीरे विकृत हो रहा है। आसमान में उड़ने वाली चील अब पेड़ की डाली पर आ बैठी है... टिं-टिं हिं टिंटिंक।

मोहना डर गया। एक डग, दो डग..... दे दौड़। वह भागा।

एक बीघा दूर जाकर उसने चिल्लाकर कहा- डायन ने बान मारकर तुम्हारी उंगुली टेढ़ी कर दी है। झूठ क्यों कहते हो कि रसपिरिया बजाते समय.....

-ऐ! कौन है यह लड़का? कौन है यह मोहना?..... रमपतिया भी कहती थी, डायन ने बान मार दिया है।

मोहना!

मोहना ने जाते-जाते चिल्लाकर कहा-'करैला'।

अच्छा, तो मोहना यह भी जानता है कि मिरदंगिया 'करैला' कहने से चिढ़ता है?.... कौन है यह मोहना?

मिरदंगिया आतंकित हो गया। उसके मन में एक अज्ञात भय समा गया। वह थर-थर काँपने लगा। कमलपुर के बाबुओं के यहाँ जाने का उत्साह भी नहीं रहा।..... सुबह शोम मिसर के लड़के ने ठीक ही कहा था।

उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

जाते-जाते मोहना डंक मार गया। उसके अधिकांश शिष्यों ने ऐसा ही व्यवहार किया है उसके साथ। नाच सीखकर फुर्र से उड़ जाने का बहाना खोजने वाले एक-एक लड़के की बातें उसे याद हैं।

सोनमा ने तो गाली ही दी थी - गुरुगिरी करता है, चोट्टा।

रमपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी- 'हे दिनकर! साच्छी रहना। मिरदंगिया ने फुसलाकर मेरा सर्वनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। हे सुरूज भगवान! इस दसदुआरी कुत्ते का अंग-अंग फूटकर.....।

मिरदंगिया ने अपनी टेढ़ी उंगली को हिलाते हुए एक लंबी साँस ली। ....रमपतिया?..... जोधन गुरुजी की बेटी रमपतिया। जिस दिन वह पहले-पहल जोधन की मण्डली में शामिल हुआ था-रमपतिया बारहवें में पाँव रख रही थी।.... बाल विधवा रमपतिया पदों का अर्थ समझने लगी थी। काम करते-करते वह गुनगुनाती- 'नवअनुरागिनी राधा, किछु नाहि मानय बाधा।.... मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था और गुरुजी ने उसे मृदंग धरा दिया था।... आठ वर्ष तक तालीम पाने के बाद जब गुरुजी ने स्वजाति की पंचकौड़ी से रमपतिया के चुमौना की बात चलाई तो मिरदंगिया सभी ताल-मात्रा भूल गया। जोधन गुरु जी से उसने अपनी .. मृदंग को उसने छाती से लगा लिया।

पेड़ की डाली पर बैठी हुई चील ने उड़ते हुऐ जोड़े से कुछ कहा- टिं-टिं-हिंक।

-एस्साला! -उसने चील को गाली दी, तम्बाकू चुनियाकर मुँह में डाल दिया और मृदंग के पूरे पर उंगलियाँ नचाने लगा- धिरिनागि, धिरगनागि, धिनता।....

पूरी जमनिका नहीं बजा सका, बीच में ही ताल टूट गया। - अ-कि-हे-ए-ए-हा-आहा-हा-हा।

सामने झरबेरी के जंगल के उस पर किसी ने सुरीली आवाज में बड़े समारोह के साथ रसप्रिया की पदावली उठाई।

'न-व-वृन्दा-वन, ल-व-न-तरूंग-गन, न-व-नव विकसित फूल।...

मिरदंगिया के सारे शरीर में एक लहर दौड़ गयी। उसकी उंगलियाँ स्वयं ही मृदंग के पूरे पर थिरकने लगीं। गाँववालों के झुण्ड दोपहर की उतरती छाया में आकर जमा होने लगे।

खेतों में काम करने वालों ने कहा पागल है। जहाँ जी चाहा, बैठकर बजाने लगता है।

-बहुत दिनों के बाद लौटा है।

-हम तो समझते थे कि कहीं मर-खप गया।

रसप्रिया की सुरीली रागिनी ताल पर आकर कट गयीं, मिरदंगिया का पागलपन अचानक बढ़ गया। वह उठकर दौड़ा। झरबेरी की झाड़ी के उस पार कौन है? कौन है यह शुद्ध रसप्रिया गाने वाला?..... इस जमाने में रसप्रिया का रसिक.....? झाड़ी में छिपकर मिरदंगिया ने देखा, मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा है। गुनगुनाहट बंद करके उसने गले को साफ किया। मोहना के गले में राधा आकर बैठ गया है।.... क्या बंदिश है।

'न-दी-बह नयन नी... र।

आहो... पललि बहाएताहि ती..... र।'

मोहना बेसुध होकर गा रहा था। मृदंग के बोल पर वह झूम-झूमकर गा रहा था। मिरदंगिया की आँखें उसे एकटक निहार रही थीं। और उसकी उंगलियाँ फिरकी की तरह नाचने को व्याकुल हो रही थीं।.... चालीस वर्ष का अधपगला भावावेश में नाचने लगा। रह-रहकर वह अपनी विकृत आवाज में पदों की कड़ी धरता..... फॉय-फॉय, सॉय-सॉय।

धिरनागि धिनता।

'दुहु रस..... म.... य तन गने नहीं ओर।

लागल दुहुक न भांग्य जो-र।'

मोहना के आधे काले और आधे ओठों पर नई मुस्कुराहट दौड़ गयी। पर समाप्त कर वह बोला - 'इस्स टेढ़ी उंगली पर भी इतनी तेजी?

मोहना हाँफने लगा। उसकी छाती की हड्डियाँ।

-उफ!-मिरदंगिया धम्म से जमीन पर बैठ गया - कमाल! कमाल! ... किससे सीखे? कहाँ से सीखा तुमने पदावली? कौन है तुम्हारा गुरु?

मोहना हँसकर जवाब दिया- सीखूंगा कहाँ? माँ तो रोज गाती है।. .... प्रातः की मुझे बहुत याद है, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं।

-हाँ, बेटा! बेताल के साथ कभी मत गाना-बजाना। जो कुछ भी है, सब चला जाएगा।... समय-कुसमय का ख्याल रखना। लो, अब आम खा लो।

मोहना बेझिझक आम लेकर चूसने लगा।

-एक और लो।

मोहना ने तीन आम खाए और मिरदंगिया के विशेष आग्रह पर दो मुट्ठी मूढ़ी भी फॉक गया।

-अच्छा, अब एक बात बताओगे मोहना, तुम्हारे माँ-बाप क्या करते हैं?

-बाप नहीं है, अकेली माँ है। बाबू लोगों के घर कुटाई-पिसाई करती है।

-और तुम नौकरी करते हो? किसके यहाँ?

-कमलपुर के नन्दू बाबू के यहाँ।

-नन्दू बाबू के यहाँ?

मोहना ने बताया, उसका घर सहरसा में है। तीसरे साल सारा गाँव कोसी मैया के पेट में चला गया। उसकी माँ उसे लेकर ममहर आई है

- कमलपुर।

-कमलपुर में तुम्हारी माँ के मामू रहते हैं?.....?

मिरदंगिया कुछ देर तक चुपचाप सूर्य की ओर देखता रहा।... .. नन्दू बाबू..... मोहना..... मोहना की माँ।

-डायन वाली बात तुम्हारी माँ कह रही थी?

-हाँ! और एक बार सामदेव झा के यहाँ जनेऊँ में तुमने गिरधरपट्टी मण्डली वालों का मिरदंग छीन लिया था।..... बेताला बजा रहा था वह ठीक है न? ?

मिरदंगिया की खिचड़ी दाढ़ी मानो अचानक सफेद हो गई। उसने अपने को सम्हालकर पूछा- तुम्हारे बाप का क्या नाम है?

-अजोधादास!

-अजोधादास?

बूढ़ा अजोधादास, जिसके मुँह में न बोल, न आँख में लोर।... . मण्डली में गठरी ढोता था। बिना पैसे का नौकर, बेचारा अजोधादास।

-बड़ी सयानी तुम्हारी माँ। - एक लंबी साँस लेकर मिरदंगिया ने अपनी झोली से एक छोटा बटुआ निकाला। लाल-पीले कपड़ों के टुकड़ों को खोलकर कागज की पुड़िया निकाली उसने।

मोहना ने पहचान लिया - लोट? क्या है? लोट?

-हाँ, नोट हैं।

-कितने रुपये वाला है? पँचटकिया। ऐं..... दसटकिया? जरा छूने दोगे? कहाँ से लाए?.... मोहना एक ही साँस में सब कुछ पूछ गया - सब दसटकिया है?

-'हाँ, सब मिलाकर चालीस रुपये हैं।' -मिरदंगिया ने एक बार इधर-उधर निगाहें दौड़ाई। फिर फुसफुसाकर बोला- मोहना, बेटा फारसिबगंज के डागदर बाबू को देखकर बढ़िया दवा लिखा लेना।..... खट्टा-मिट्ठा खाने से परहेज करना।..... गरम पानी जरूर पीना।

-रुपये मुझे क्यों देते हो?

-जल्दी रख ले कोई देख लेगा।

मोहना ने भी एक बार चारों ओर नजर दौड़ाई। उसके ओठों की कालिख और गहरी हो गयी।

मिरदंगिया बोला - बीड़ी-तम्बाकू भी पीते हो? खबरदार।

वह उठ खड़ा हुआ। मोहना ने रुपये ले लिए।

-अच्छी तरह गाँठ में बाँध लो। माँ से कुछ मत कहना।

-और हाँ, यह भीख का पैसा नहीं, बेटा, यह तेरी कमाई के पैसे हैं। अपनी कमाई के।....

मिरदंगिया न जाने क्यों रूक गया। कुछ सोचकर बोला - नहीं, मोहना। तुम्हारे जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ महारानी है..... . मैं महाभिखरी दसदुआरी हूँ। जाचक, फकीर।..... जो पैसे बचें, उसका दूध पीना।

मोहना की बड़ी-बड़ी आँखें कमलपुर के नन्दू बाबू की आँखों जैसी हैं।

-रे मा-ह-ना-रे-हे। बैल कहाँ हैं रे?

-तुम्हारी माँ पुकार रही है शायद।

-हाँ, तुमने कैसे जान लिया?

-मोहना-रे हे।

एक गाय ने सुर में सुर मिलाकर अपने बछड़े को बुलाया।

गाय-बैलों के घर लौटने का समय हो गया। मोहना जानता है, माँ बैल हाँककर ला रही होगी। झूठ-मूठ उसे बुला रही है। वह चुप रहा।

-'जाओ। - मिरदंगिया ने कहा -माँ बुला रही है। जाओ।.... अब से मैं पदावली नहीं, रसप्रिया नहीं, निरगुन गाऊँगा। देखो, मेरी उंगली शायद सीधी हो रही है। शुद्ध रसप्रिया कौन गा सकता है आजकल।'

-'अरे, चलु मन। चलु मन ससुरार जइबे हो रामा?

कि आहो रामा,

नैहरा में अगिया लगायब रे-की .....।

खेतों की पगडंडी झरबेरी के जंगल के बीच होकर जाती है। निरगुन गाता हुआ मिरदंगिया झरबेरी के झाड़ियों में छिप गया।'

-ले। यहाँ अकेला खड़ा होकर क्या करता है? कौन बजा रहा था मृदंग रे?

-घास को बोझा सिर पर लेकर मोहना की माँ खड़ी है।

-पँचकौड़ी मिरदंगिया।

-ऐं वह आया है? आया है वह?- उसकी माँ ने बोझ को जमीन पर पटकते हुए पूछा।

-मैंने उसके ताल पर रसपिरिया गया है। कहता था, इतना शुद्ध रसप्रिया कौन गा सकता है आजकल।..... उसकी उंगली अब ठीक हो जायेगी।

माँ ने बीमार मोहना को आल्हाद से अपनी छाती से सटा लिया।

-लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी-भर शिकायत करती थी, बेईमान है, गुरु-दरोही है, झूठा है।

-है तो! वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं। खरबदार जो, उसके साथ फिर कभी गया। दुरदुआरी जाचकों से हेलमेल करके अपना ही नुकसान होता है।..... चल, उठा बोझ।

मोहना ने बोझ उठाते समय कहा- जो भी हो, गुनी आदमी के साथ रसप्रिया.....

-चौप! रसप्रिया का नाम मत ले।

अजीब है माँ। जब गुस्सायेगी तो बाघिन की तरह और जब खुश होती है तो गाय की तरह हुंकारती आएगी और छाती से लगा लेगी। तुरंत खुश, तुरंत नाराज.....

दूर से मृदंग की आवाज आयी - धा तिंग, धा तिंग।

मोहना की माँ खेत की ऊबड़-खाबड़ मेड़ पर चल रही थी। ठोकरें खाकर गिरते-गिरते बची। घास का बोझ गिरकर खुल गया। मोहना पीछे-पीछे मुँह लटकाकर आ रहा था। बोला - क्या हुआ माँ?

-कुछ नहीं।

-धा तिंग, धा तिंग।

मोहना की माँ खेत की मेड़ पर बैठ गई। जेठ की शाम से पहले जो पुरवैया चलती है, धीरे-धीरे तेज हो गई।.... मिट्टी की सोंधी सुगन्ध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी।..... धा तिंग, धा तिंग।

-मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा। -मोहना की माँ आगे कुछ न बोल सकी।

-कहता था, तुम्हारे-जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ महारानी है, मैं तो दसदुआरी हूँ.....।

-झूठा बेईमान। मोहना की माँ आँसू पोंछकर बोली- ऐसे लोगों की संगत कभी मत करना। मोहना चुपचाप खड़ा रहा। ✷

मौत की घाटी में

❑ अज्ञेय

> एकाएक सारा गाँव ही समवेत स्वर से एक सीत्कार-ध्वनि कर उठा। वैसी ध्वनि पाश्चात्य देशों में तीव्र घृणा को व्यक्त करने के लिए की जाती है, यह मैं जानता था, पर यहाँ भी क्या उसका वही उद्देश्य हो सकता है? आशंका से मेरा हृदय भर उठा - यदि घृणा है तो क्यों? छह सौ आदमियों की उस भेदक स्वर से भरी हुई घृणा की कल्पना से ही सिहर कर मैं धड़कते हुए हृदय से किसी-न-किसी तरह घर पहुँचा और भीतर घुस कर किवाड़ बन्द करके बैठ गया।

क्षुद्र मानव को कभी-कभी देवताओं का समकक्षी हो सकने का सौभाग्य प्राप्त है, लेकिन वह सौभाग्य अधिक देर तक बना नहीं रह सकता। सृजन के क्षण चिरस्थायी नहीं होते, नहीं होते, वे आकर उड़ जाते हैं। संभव है, ईश्वर भी अपने रचना-क्षेत्र में ऐसे उत्कर्ष के अवसर पाता हो, उन्हीं में 'सृष्टि' करता हो और बाकी में केवल मात्र 'निर्माण', तभी तो संसार में इतनी ऊँच-नीच और असमानता है। जो वस्तु 'सृजन' की गयी है, 'इंसपिरेशन' के क्षण में रची गयी है, प्रतिभा-प्रसूता है, वही सुन्दर और शुभ है, बाकी तो केवल 'बनायी' हुई चीजें हैं, जगह भरने के लिए।

'देवताओं के अंचल' में बैठ कर भी एक दिन देवत्व के बाद मैंने पाया कि लिखना आगे चलना नहीं है। मैंने कलम रख दी और शून्य दृष्टि से मकान की दीवार की ओर देखने लगा।

'सिक्स मेमोरेबल डेज एंड नाइट्स'- छह स्मरणीय दिन और रातें'

दीवार पर पिछले वर्ष के किसी यात्री-दल का लिखा हुआ यह लेख बिना कोई गहरी छाप डाले मेरे मन के पट पर नाचने लगा। मेरा दिन भर बहुत अच्छा बीता था, लेकिन क्या दिन ही स्मरण था? लिखता, तो लिखता कि इस चिरस्मरणीय सौन्दर्य के बीच मैंने छह दिन बिताये। क्योंकि दिन क्या हैं? उनका अस्तित्व तो उनमें भोगी चीजों या अनुभूतियों के कारण ही है।.....

दिन भर लिखते-लिखते मन इतना थक गया था कि इस बेसिर-पैर के विचार को भी आगे नहीं बढ़ा सका। मैंने ओवर कोट पहना और ढलते सूर्य की ओर पीठ करके पहाड़ की चोटी की ओर सैर के लिए बढ़ने लगा। दिन भर बादल घिरे रहे थे, यद्यपि वर्षा नहीं हुई थी और बीच-बीच में धूप झलक जाती थी। उस समय हल्के सफेद बादलों से घिरी हुई मनाली ऐसी सोहती मानो किसी आकाशवासी जौहरी ने धुनी हुई रुई में लपेट कर बढ़िया पन्ना रख दिया हो। लेकिन अब एक और भी विस्मयकारी दृश्य सामने आ रहा था- जिस ओर बादल जरा खुलते थे, उसी ओर उनके अवगुण्ठन के बीच में से अछूती, 'अक्षत-यौवना' हिमचोटियाँ दीख जाती थीं। तब यह मालूम हुआ कि आकाशवासी जौहरी ने रुई से लपेट देना ही पर्याप्त नहीं समझा, पन्ने की रक्षा के लिए उसके सब ओर विराट हिमशृंङ्ग ला खड़े किये हैं- और जिस ओर वे नहीं हैं उस ओर व्यास नदी का प्रवाह है।

खैर, मैं मनाली गाँव लाँघ कर मनु-रिखि के मंदिर के पास से होता हुआ ऊपर चढ़ता गया। चढ़ते-चढ़ते एकाएक मुझे लगा कि चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, कहीं कोई आदमी नहीं है, पक्षियों का स्वर नहीं है, प्रातः सर्वत्र सुन पड़ने वाला झरने का कल-स्वर भी नहीं है। मैंने देखा कि साँझ बहुत घिर आयी है और मैं गाँव से तीन-एक मील ऊपर निकल आया हूँ। मैं जल्दी-जल्दी लौट पड़ा।

कुलू के गाँव में दीया प्रायः नहीं जलता। संध्या होते-होते लोग डाँगरों की देख-रेख से निपट कर, भोजन-वासन उठा कर घर के भीतर आग के आस-पास बैठ जाते हैं और जब तक मन होता है, गप-शप करते हैं, फिर सो जाते हैं। प्रातः काल का सूर्य स्त्रियों को गाँव की बाउड़ी पर कपड़े धोते या चीड़ के वनों में लकड़ी बीनते-चुराते और पुरुषों को खेती पर काम करते या ढोर चराते पाता है।

इसीलिए मैं जब गाँव के पास लौटकर आया था, तब गाँव अँधेरे में पड़ा था। किसी घर के भीतर से कभी हँसी की उड़ती-सी ध्वनि आकर सन्नाटे को गहरा कर दे तो कर दे और किसी तरह की हलचल नहीं थी; न ऐसा कोई प्रकाश ही था कि हलचल देखी जा सके। हाँ, पत्थर पर भारी चाँप से पड़ते हुए मेरे ही बूटे का स्वर उस शांति को एक भद्दे ढंग से भंग कर रहा था।

मेरे गाँव में प्रवेश करते ही एक-एक कर घरों के दरवाजे खुलने लगे और दो-दो तीन-तीन आदमी प्रत्येक में से बाहर निकल कर खड़े हो गये। थोड़ी देर में मैंने पाया कि गाँव के प्रायः तमाम पुरुष निवासी इस प्रकार अपने-अपने झोंपड़े या घर की देहरी में खड़े हैं और स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं। इस ढंग का कौतूहल वैसे भी किसी को नहीं सुहाता, फिर उस समय मुझे लगा कि उनमें कुतूहल से अधिक तीखा भी कुछ है - रोष या द्वेष या घृणा..... मैं सिर झुकाये तीव्र गति से बढ़ता चला, मुझे समझ नहीं आया कि बात क्या है. .....।

एकाएक सारा गाँव ही समवेत स्वर से

एक सीत्कार-ध्वनि कर उठा। वैसी ध्वनि पाश्चात्य देशों में तीव्र घृणा को व्यक्त करने के लिए की जाती है, यह मैं जानता था, पर यहाँ भी क्या उसका वही उद्देश्य हो सकता है? आशंका से मेरा हृदय भर उठा - यदि घृणा है तो क्यों? छह सौ आदमियों की उस भेदक स्वर से भरी हुई घृणा की कल्पना से ही सिहर कर मैं धड़कते हुए हृदय से किसी-न-किसी तरह घर पहुँचा और भीतर घुस कर किवाड़ बन्द करके बैठ गया।

मैंने सुना कि गाँव-भर के किवाड़ बन्द हैं। बत्ती नीचे करके चारपाई पर लेट कर मैं सोचने लगा कि इस घटना का कारण क्या हो सकता है?

घृणा? लेकिन मैंने उन्हें घृणा का कारण तो नहीं दिया।

डर? मैं विशेष खतरनाक भी नहीं दीखता और दिन-भर जिस निरुपद्रव ढंग से बैठकर लिखता रहा हूँ, उससे तो उन्हें बिल्कुल आश्वस्त हो जाना चाहिए कि इस लेखक जन्तु में हिंसा बिल्कुल नहीं हैं. ..

तब सन्देह?

मुझे कुछ ही समय पहले की लाहौर की बात याद आयी। लाहौर में जब शहीदगंज-आन्दोलन में 'कर्फ्यू-ऑडर' जारी हुआ और सायंकाल सात बजे के बाद लोगों का घर से निकलना मना हो गया, तब मुसलमानों ने एक नयी प्रथा चलायी। नित्य सात बजे वे गुलाम पर आयी हुई विपत्ति का निवारण करने के लिए, अपने-अपने घरों की छत पर चढ़कर आकाश की ओर एक लंबी पुकार भेजते थे - अंधकार में वह दर्द-भरा स्वर खाहमखाह मन में किसी अनिष्ट की भावना पैदा कर देता था - सचमुच ऐसा जान पड़ने लगता था कि किसी घनी छाया से वातावरण गहरा हो गया है, रोमांच हो जाता था.....।

मुझे यह याद आया कि असभ्य आदिम जातियों में अनिष्ट-निवारण के लिए भूत-प्रेतों का प्रकोप हटाने के लिए सीत्कार ध्वनि या कराहने का-सा स्वर पैदा किया जाता था (अब भी होता है)। कुछ दिन पहले फ्रेजर की 'गोल्डन बाउ' में मैंने आदिम जातियों की प्रथाओं का वर्णन पढ़ा था, वह अभी मेरे दिमाग में भरा हुआ था और मैं हर-एक बात का कारण किसी आदिम विश्वास या प्रथा में खोजा करता था।

तो, सन्देह। शायद मेरे दिन भर चुप-चाप लिखते रहने से और शाम को काला ओवर-कोट पहन कर घूमने से उन्हें लगा हो कि मैं जादूगर हूँ या ऐसा ही कुछ..... लेकिन मनाली के लोग तो सभ्य हैं, वीर राजपूत हैं.....।

जो बात उस आदमी ने पूछी थी, वह उतने बेझिझक खुलेपन से कही गयीं जैसी मैंने कभी नहीं सुनी थी। न सभ्यों में, न असभ्यों में, न शीलवान् लोगों में और न बदमाशों में। उस चर्चा के साथ हम लोगों के मन में इतना गहरा जुगुप्सा का भाव है कि हम लोग अधिक-से-अधिक बेशर्म होकर भी उसे भावनाहीन होकर नहीं कह सकते। यदि शर्मिंदा होकर नहीं तो ललकार से ही कहते हैं। उस आदमी में इतना साधारण भाव क्यों हुआ? क्या उसके लिए यह बात भी इतनी साधारण है?

ऐसी-ऐसी बातें सोचते-सोचते, विमर्श करते मैं सो गया.....।

रात में मेरे घर पत्थर बरसाये गये। पहले मैंने समझा कि ओले पड़ रहे हैं, लेकिन बाहर आकर देखा कि आकाश स्वच्छ है और तभी एक और बौछार हुई।

मैं फिर लेट गया। एक हल्की-सी जिज्ञासा मन में उठी, क्या यह वह घर भुतहा है? भूत मैंने कभी देखा नहीं, देखने की उत्कंठा ही लिए रह गया हूँ।

और कोई घटना नहीं हुई। मैंने श्रीयुत बैनन से सारी बातें कहीं। वे मुस्कुरा दिये। फिर उन्होंने बताया कि पिछले साल जो लोग उस घर में आकर ठहरे थे, उन्होंने गाँव की स्त्रियों से कुछ छेड़-छाड़ की थी। उन्होंने पत्थर बरसा कर उन लोगों को भगा दिया था, पीछे थाने में रिपोर्ट भी हुई थी। थानेदार ने गाँव वालों को धमकाया भी था जिससे वे अधिक नाराज हो गये। अब वे शायद उस घर में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर संदेह करने लगे हैं.....।

उन्होंने गाँव के मुखिया को बुलाकर मेरा परिचय करा दिया और मेरी ओर से आश्वासन भी दिया। उसके बाद मैं मुखिया के साथ जाकर गाँव के कुछ प्रमुख व्यक्तियों से मिला। जब वे मेरे उस गाँव के घर में रहने का, अकेले रहने का और दूसरे यात्रियों की तरह दोपहर में ही न घूमने का कारण पूछ कर संतुष्ट हो गये, तब मैं सबको नमस्कार करके लौट आया। थोड़ी देर बाद जब गाँव का एक लड़का छोटी-सी टोकरी में एक लौकी, कुछ करेले और थोड़ा-सा शहद देने आया, तब मैंने जान लिया कि गाँव वाले प्रसन्न हो गये हैं। यह मैत्री-भाव फिर बराबर बना रहा, लेकिन शाम को घूमना मैंने छोड़ दिया। कभी लिखने से बहुत ऊब कर जाता भी, तो गाँव की ओर कदापि न जाता।

तीन दिन बाद की बात है। मैं घर के बरामदे में- बनावट के ढंग से तो उसे 'मचान' कहना ही अधिक उचित होगा, बैठा पत्र लिख रहा था। एक अजनबी पहाड़ी आदमी आकर मेरे पास खड़ा हो गया। मैंने शक्ल से पहचाना कि मनाली का नहीं है। वहाँ के प्रायः सभी आदमियों को मैं पहचान गया था।

मैंने उसे बैठने को कुर्सी देते हुए बातचीत आरंभ की। उसने कहा कि मुझे यहाँ सब्जी-तरकारी न मिलती हो तो वह अपने गाँव से ला सकता है। उसके यहाँ कद्दू, करेले, बैंगन आदि होते हैं। 'अच्छी बात है, दे जाया करो', कहकर मैं अपने काम की ओर मुड़ा, तभी उसने मुझसे प्रश्न पूछा, जिसे मैं दुहरा नहीं सकूँगा, लेकिन अभिप्राय यह था कि अगर मैं कोई वैसी वासनाएँ लेकर आया हूँ, उनकी पूर्ति का सामान वह पेश कर सकता है।

मैं स्तब्ध होकर ताकता रह गया। फिर एकाएक ग्लानि का तीव्र झोंका आया, फिर क्रोध में मन हुआ कि इस नीच आदमी को मचान से नीचे धकेल दूँ, लेकिन एक बात ने मुझे रोक दिया और मुझे गंभीर होकर सोचने को बाध्य किया। जो बात उस आदमी ने पूछी थी, वह उतने बेझिझक खुलेपन से कही गयीं जैसी मैंने कभी नहीं सुनी थी। न सभ्यों में, न असभ्यों में, न शीलवान् लोगों में और न बदमाशों में। उस चर्चा के साथ हम लोगों के मन में इतना गहरा जुगुप्सा का भाव है कि हम

लोग अधिक-से-अधिक बेशर्म होकर भी उसे भावनाहीन होकर नहीं कह सकते। यदि शर्मिंदा होकर नहीं तो ललकार से ही कहते हैं। उस आदमी में इतना साधारण भाव क्यों हुआ? क्या उसके लिए यह बात भी इतनी साधारण है?

मैंने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए बात बदल दी। धीरे-धीरे उसने मनाली के लोगों की चर्चा आरंभ की - कहा कि वे लोग अभिमानी, बदमाश, यात्रियों को कष्ट देने वाले हैं और अगर मैं चाहूँगा तो वह आदमी उन्हें खबर लगने दिये बिना प्रबंध कर देगा। मैंने फिर टाल दिया, तब उसने बताया कि पिछले वर्ष आदमी वहाँ आकर टिके थे, उन्होंने किसी को बुलाया था। इस पर गाँव वाले बहुत नराज हुए थे और उन्होंने घर पर पत्थर बरसाये थे। ''बाबूजी, ये मनाली के राजपूत बड़े बदमाश हैं.....।''

मैंने किसी तरह उसे निकाला और लौटकर अपने स्थान पर बैठ गया। लिखना संभव नहीं हुआ, मैंने एक लंबी साँस लेकर कलम रख दी।

मेरी दृष्टि उठकर फिर उस 'शिलालेख' की ओर गयी - 'छह स्मरणीय दिन और निकला।

एकाएक इस - 'स्मरणीय' का अर्थ एक कड़वी हँसी के रूप में मेरे भीतर से फूट निकला।

उस घर में काम करना असंभव हो गया। अपने लिखने में जो तटस्थ भाव चाहता था, वह वहाँ प्राप्य नहीं रहा था। मानों पिछले वर्ष के कुछ दिनों में वहाँ जमा हुआ वातावरण एक तीव्र गंध बन कर मुझ में भर रहा था - वहाँ बैठ कर एक अजीब अकुलाहट-सी मन में होती थी और भाग जाने का जी होता था.... लारेंस ने कहीं कहा है कि 'मानव की बू मानव को असह्य हो गयी है' - इस कथन की सच्चाई का अनुभव वहाँ हर समय होता रहा था.....।

मैं वह मकान छोड़कर मनाली से उत्तर नयी बस्ती दाना में आ गया - बैनन साहब ने अपने बँगले का आधा हिस्सा दे दिया। यहाँ पर उनके सेबों के बाग में उनकी शिशु कन्या शकुन्तला की गंभीर नीली आँखों और तीव्र हँसी देखकर मैं उस दर्द को भुलाने लगा जो मनाली वाले घर में मेरे भीतर जाग उठा था।

लेकिन एक घटना अभी और घटनी थी।

उन दिनों मेरी डाक काफी थी- चिट्ठियाँ लिखने और पाने का मुझे व्यसन था। पढ़कर चिट्ठियाँ फाड़ डालता था, लेकिन कचरा फेंकने के लिए कोई स्थान न होने के कारण मैं उसे ओवर कोट की जेब में भर लेता था और जब सैर के लिए जाता था तब नदी में डाल देता था। पहाड़ों के अनेक रमणीक स्थानों पर दर्शकों द्वारा बिखराया हुआ कचरा-फटे कागज, फलों के छिलके आदि- देखकर मेरे मन में जो भीषण अभिशाप जाग उठता है- उसी की याद के कारण मुझे कभी साहस नहीं हुआ कि कागज फाड़कर जहाँ-तहाँ फेंक दूँ कि टुकड़े हवा में उड़-उड़कर दृश्य को बिगाड़ा करें।

हमारी करतूत स्पष्ट वहाँ दिखती है, जहाँ स्वाभाविकता मरी नहीं है, जहाँ हम अपनी 'देन' का और प्राकृतिक अवस्था का विपर्यय एक स्थान पर देख सकते हैं- जिनका सर्वोत्तम उदाहरण कुलू का अंचल है। वह भी अब सभ्यता की सैरगाह बन गयी है, अतः कुछ एक वर्षों में वहाँ भी देखने को कुछ नहीं होगा - सिवाय अपने बेवकूफ चेहरे के बेहूदा प्रतिबिम्ब के। अंग्रेजी के एक कवि ने कहा है, ''जब मैं झील के स्वच्छ पानी में झाँक कर वहाँ के छोटे-छोटे भागते हुए जानवर और रंग-बिरंगी घास-फूस नहीं देखता, तब मैं एक मूर्ख के चेहरे पर प्रतिबिम्ब देखता हूँ।

तो एक दिन साँझ को इसी प्रकार अपनी सफाई यात्रा पर चल मैं दाना और मनाली के बीच नदी के पुल पर खड़ा था। झुटपुटे में एक अलौकिक भीतरी चमक से जगमग नदी के तीव्र बहते हुए फेनिल जल को देखता हुआ मैं जेब से एक-एक मुट्ठी कागज निकाल कर छोड़ता जाता था। हवा के हल्के झोंके से जब वे टुकड़े काँपते हुए धीरे-धीरे नीचे उतर जाते थे और फिर पानी को छूते ही एकाएक तीव्र गति से प्रवाह के साथ आगे उछलकर पड़ते थे, तब मेरा हृदय भी उल्लास से उछल पड़ता था.... इसी तरह कहीं इस विश्व के पीछे छिपी हुई भी कोई रहस्यमय अदृश्य नदी होगी, मानव-जीवन सब फटे हुए कागज के पुर्जे की तरह निराधार होकर अपने को उसमें उत्सर्ग करता होगा, तब उसके स्पर्श से एकाएक नयी चेतना पाकर आगे चल पड़ता होगा, अस्तित्व के धुँधलके में किसी सुदूर अगाध विस्तार में लीन होने के लिए..... कुछ ऐसा ही अस्पष्ट भाव नित्य मेरे मन में इस समय उभर आता था..... पुल पर बिताये हुए अल्प समय के बाद मैं वैसा ही लौटता था जैसा कोई धर्मवान व्यक्ति प्रार्थना करके लौटता होगा.....।

उस दिन देर कुछ अधिक हो गयी थी, कागज के टुकड़े नदी को छूते हुए नहीं दीखते थे, पर नदी का प्रवाह साफ दीखता था। पहाड़ी जीवन के प्रति एक कोमल भाव मेरे मन में भर रहा था।

पुल पर बूटों की चाँप से मैं चौंका। मैंने देखा, एक एंग्लो-इण्डियन सैलानी, जिसे मैं दाना में दो-तीन बार देख चुका था, बढ़ा जा रहा था। मुझे देखकर वह ठिठका, फिर एकाएक अंग्रेजी में बोला, ''यहाँ किसी की ताक में खड़े हो क्या?''

बात जितनी साफ थी, उसका व्यंग्य इशारा उससे भी साफ था। मैंने फटकार कर उत्तर दिया, ''शट अप।''

वह मुस्कुराता हुआ ही आगे चला गया। मैं उस पक्षी की तरह, जिस पर ऊँची उड़ान में एकाएक बिजली गिर पड़ी हो, आहत मन लेकर लौट आया।

देवताओं के अंचल में रहते हुए भी मैंने देखा कि कहीं किसी तरफ घूमने को स्थान नहीं रह गया है। तब मैंने लिखना एकदम छोड़कर इस समस्या का सामना किया जो शिशिर ऋतु के कोहरे की तरह न जाने कहाँ से आकर सब ओर छा गयी थी। यह देवताओं का अंचल क्यों आज अपना विस्तार भूलकर अपने एक कोने में पड़ी हुई 'मौत की घाटी' का नाम अपना रहा है?

मैंने यह भी देखा कि इसका उत्तरदायित्व देवताओं पर नहीं, मानवों पर है और उन मानवों पर जो अपनी सभ्यता के मद में चूर रहते हैं। हम समतल भूमि के रहने वाले ही अपने पतन की सड़ाँध वहाँ पहाड़ों में ले गये

हैं। अपनी भद्दी छाप से ही हमने पहाड़ों का सौन्दर्य विकृत कर दिया है। यहाँ तक कि आज भारत के पहाड़ी इलाकों में शायद ही कोई ऐसा स्थल बचा हो जो दूषित नहीं हो गया हो, जिसे दर्पोद्धत बेवकूफ सभ्य मानव ने यह कहकर कि ''तुम सुन्दर हो? तो लो, मैंने अपने कलंक से तुम्हें भी काला कर दिया है।' यदि पहाड़ों में कोई ऐसे स्थल बचे हैं, जिनमें सभ्य मानव की यह काली करतूत डायन सी मुँह बाये सामने आती, तो वे वही स्थल हैं, जहाँ पुराने सौन्दर्य का कोई चिन्ह ही नहीं बचा, जिसे हमने अपने जैसा ही बना लिया है - सभ्य और सड़ा हुआ। हमारी करतूत स्पष्ट वहाँ दिखती है, जहाँ स्वाभाविकता मरी नहीं है, जहाँ हम अपनी 'देन' का और प्राकृतिक अवस्था का विपर्यय एक स्थान पर देख सकते हैं- जिनका सर्वोत्तम उदाहरण कुलू का अंचल है। वह भी अब सभ्यता की सैरगाह बन गयी है, अतः कुछ एक वर्षों में वहाँ भी देखने को कुछ नहीं होगा - सिवाय अपने बेवकूफ चेहरे के बेहूदा प्रतिबिम्ब के। अंग्रेजी के एक कवि ने कहा है, ''जब मैं झील के स्वच्छ पानी में झाँक कर वहाँ के छोटे-छोटे भागते हुए जानवर और रंग-बिरंगी घास-फूस नहीं देखता, तब मैं एक मूर्ख के चेहरे पर प्रतिबिम्ब देखता हूँ।

यह कहना कठिन है कि इस अवस्था में आलोचना करने का कुछ अच्छा परिणाम होगा। हो सकता है कि कुलू के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर और यह जानकर कि उसे बिगाड़ सकना संभव है। बहुत से 'सभ्य' लोग उस संभावना को मिटाने की बजाय उसका लाभ उठाने दौड़ें। तोल्स्तोय ने एक कहानी में बताया कि एक साधु तब किसी शहर से लौटकर वहाँ होने वाले पतन का रोमांचकारी चित्र खींच कर अपने साथियों को साधना का महत्त्व बताने लगा, तब सारी साधुमण्डली अपना-अपना डोरिया-डण्डा संभाल कर शहर की ओर दौड़ पड़ी।

पहाड़ों पर हम सभ्य लोगों की कृपा से जो कुछ हो रहा है, उसकी माँग है कि हम परिस्थितियों की जाँच करें - केवल पर्वतीय प्रदेशों की नहीं, अपनी परिस्थिति की जाँच करें। सैर के लिए पर्वतों में गया हुआ सभ्य सामाजिक मानव अपना अधःपतन और गन्दगी

वहाँ भी बिखेर आया है। एक विशेष प्रकार के कीड़े की तरह, जो पेड़ के पत्ते पर उसकी हरियाली खाता हुआ बढ़ता चलता है और इस प्रकार अपने पीछे पत्ते पर एक सुनी लकीर छोड़ जाता है, हम लोगों ने भी पहाड़ों की पुण्य भूमि पर पतन, रोग और मृत्यु की एक गहरी रेखा खींच दी है।

समतल भूमि के लोग श्रेष्ठता के घमण्ड से भरकर कहते हैं कि पहाड़ों में क्षय और मैथुनज रोगों के होने का कारण पहाड़ी लोगों का जीवन गन्दा और आचार नीति भ्रष्ट है। यह अपने पाप को छिपाने का प्रपंच है। वास्तव में रोग समतल भूमि से वहाँ गये हैं। पहाड़ों में इन रोगों का नामोनिशान न होने के कारण ही वहाँ के लोग इनके प्रति निरापद (इम्यून) नहीं थे। कोई भी संक्रामक रोग जब बहुत देर तक किसी प्रदेश पर छाया रहता है, तब उसका विष ही अपना विरोधी तत्व पैदा कर देता है और वहाँ के वासी उस विष के प्रति निरापद हो जाते हैं। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। अफ्रीकी हब्शियों में भी क्षयरोग नहीं था, जब गोरे लोग गए, तब इतनी तीव्र गति से फैला कि आतंक छा गया। एच.जी.वेल्स ने अपनी एक कहानी में बताया है कि रोग-मुक्त समाज में आज का प्राणी जा घुसता है, जो देखने में बिल्कुल स्वस्थ है, लेकिन उसके पहुँचते ही सारे देश में जुकाम फैल जाता है- क्योंकि जुकाम का जीवाणु उस देश में न होने से उसके प्रति निरापद होने की क्षमता भी नहीं थी।

रही वहाँ के आचार की बात। निःसंदेह आचार की दृष्टि से ये उस उस अवस्था में हैं, जिसमें हम आज के सदियों पहले रहे होंगे। लेकिन वह आचार आत्यन्तिक रूप से गलत ही है, ऐसी बात नहीं है। आचार कोई शाश्वत नियम नहीं, वह स्वभावतया विकासशील है और विकास का पहला सिद्धांत है जाति की अस्तित्व-रक्षा अर्थात् प्रकृति बिना मानव के जाने ही उसे उस दशा में प्रेरित करती है जो उसका अस्तित्व कायम रखने के लिए सर्वोत्तम मार्ग है। हम आस्तिक हों या नास्तिक, यह बात हमें माननी ही पड़ेगी और जब यह माना जायेगा तब किसी भी अवस्था का पहला हेतु- उसका औचित्य प्रमाणित करने वाला हेतु- हमें उस अवस्था के भीतर ही खोजना पड़ेगा।

कुलू के अंचल से आगे हिमाचल के हृदय के निकट बसने वाले लाहुली लोगों का आचरण इसका उदाहरण है। उन लोगों में शादी की रस्म बहुत सरल है और तलाक की रस्म उससे भी सरल। नर-नारियों को मिलने-जुलने की खुली आजादी है, लेकिन उनका जीवन हमारे जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक स्वच्छ और नियमित है। उनके पाँच-छह तलाकों में 'मजिस्ट्रेट' का काम करने के बाद मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि अपने आचार-शास्त्र के भीतर लाहुली लोग जितने नीतिवान् हैं, हम लोग उसका दशमांश भी अपने नियमों के संबंध में नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि हमारे नियमों की अस्वाभाविकता ही उसका कारण है।

इस दृष्टि से पहाड़ियों का आचार उनके जीवन के सर्वथा अनुकूल है - यानी अनीतिमय नहीं है। कुलू के अंचल से आगे हिमाचल के हृदय के निकट बसने वाले लाहुली लोगों का आचरण इसका उदाहरण है। उन लोगों में शादी की रस्म बहुत सरल है और तलाक की रस्म उससे भी सरल। नर-नारियों को मिलने-जुलने की खुली आजादी है, लेकिन उनका जीवन हमारे जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक स्वच्छ और नियमित है। उनके पाँच-छह तलाकों में

'मजिस्ट्रेट' का काम करने के बाद मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि अपने आचार-शास्त्र के भीतर लाहुली लोग जितने नीतिवान् हैं, हम लोग उसका दशमांश भी अपने नियमों के संबंध में नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि हमारे नियमों की अस्वाभाविकता ही उसका कारण है, लेकिन अस्वाभाविकता की बात मान लेने पर पहाड़ी लोगों की आलोचना करने का हमारा मुँह नहीं रहता।

हम लोग ऐसी हरकतें करते हुए पहाड़ियों को शिक्षित बनाने का अहंकार जितनी जल्दी छोड़ दें उतना ही अच्छा। वास्तव में हम कर क्या रहे हैं, इसका उदाहरण मुझे दाना की बस्ती में भटकती हुई एक रोगिनी युवती में मिला। मैं उसका फोटो खींचना चाहता था, उसके लिए वह राजी नहीं हुई, लेकिन उससे अधिक कुछ के लिए वह अप्रस्तुत नहीं होगी, यह बात मुझ पर प्रकट करने में उसने संकोच नहीं किया - उसी ढंग से जो उसे किसी पूर्ववर्ती, अतिशय, सभ्य, शिक्षित व्यक्ति ने पैसे की खनक के द्वारा सिखाया होगा।

मुझे विशेष खेद नहीं है कि मैं यात्रा-वर्णन से इतनी दूर भटक गया। पहले मुख्यतया 'रोहतंग की जोत' का वर्णन करने का विचार था, लेकिन जब शीर्षक सूझा तब यही उचित जान पड़ा कि उसे सार्थक करने में रोहतंग की जोत भी कुछ करती है, उसके साथ उसका वर्णन भी होना चाहिए जो मनुष्य ने उसे सार्थक करने के लिए किया है।

खैर! मनाली और उसके आस-पास का प्रदेश देखकर, हिडिम्बा देवी के मंदिर की चोटी तक चढ़कर, वशिष्ठ कुंड में स्नान करके, जब ऐसा कोई स्थान नहीं बचा कि एक दौड़ में देखकर लौटा जा सके, तब तय हुआ कि रोहतंग की जोत देखी जाए। उस समय तक मेरे दो अतिथि आ गये थे, दो और मित्र भी पार्टी में शामिल हो गये। प्रबंध मेरे जिम्मे रहा।

हम लोगों ने दो टट्टू ठीक करके सामान आगे चलता किया। राह में दो रात ठहरना पड़ सकता है - यद्यपि कोशिश की जायेगी कि दूसरी रात मनाली पहुँचा जाए - यह सोचकर मैंने पाँच आदमियों के लिए पर्याप्त भोजन सामग्री, कोको, डबल रोटी, कुछ सूखे फल आदि ले लिए। एक बोतल ब्रांडी की भी रख ली - बहुत ऊँचाई पर जाने से हृदय पर इतना दबाव पड़ता है कि कभी-कभी उसकी जरूरत पड़ जाती है। दो बार पहले ऊँची चढ़ाई के अनुभव में मैं यह जान गया था।

मनाली से रोहतंग तेरह-चौदह मील है। पहला पड़ाव कोठी पर (जहाँ डाक बँगला है और खाद्य-सामग्री भी मिलती है) या राहला पर होता है। राहला से ही रोहतंग की चढ़ाई आरंभ होती है, अतः हमने वहीं पड़ाव करने का निश्चय किया। राहला मनाली से आठ मील है।

आँखें और भी निकम्मी हो गयी थीं- सब कुछ नीला काँपता हुआ-सा दीखता था। मैं आँखें बन्द करके सोचने लगा - अगर मेरे साथी न आये, तब कल मुझे देखकर पहचानेगा भी कौन? मेरे साथी तलाश करेंगे - लेकिन कहाँ पर? मुझे याद आया कि बर्फ पर मैं अपना नाम लिख आया था - उन्होंने अवश्य देखा होगा ..... लेकिन उससे अनुमान तो नहीं होगा कि मैं कहाँ हूँ- उससे केवल यही जाना जा सकेगा कि 'मैं था'. ..... और दो-तीन दिन बाद सूर्य की धूप उस चिन्ह को भी मिटा देगी - बर्फ का वक्षःस्थल फिर किसी और की लिखत के लिए उतना ही साफ-स्वच्छ हो जायेगा। न जाने क्यों, मुझे यही बात एक भावी दुर्घटना-सी जान पड़ने लगी कि मेरा नाम वहाँ से मिट जायेगा।

हम लोग मजे-मजे चलते हुए शाम तक वहाँ पहुँच गये। दोपहर का भोजन करके चले थे, शाम को दिन छिपते-छिपते राहला पहुँच गये। चलते समय तीन साथी हमारे साथ और मिल गये थे, जिनमें एक की खादन-शक्ति का अनुमान हमें नहीं था। जब राह के सुन्दर जल-प्रपात, व्यास नदी की टक्कर से कटे हुए पहाड़, चीड़ और बाँस के जंगल, कहीं-कहीं छोटे बौद्ध-शैली के मंदिर 'ॐ मणि पद्मे हुं' मंत्र के शिलालेख देखते हुए और साँझ की बारिश में भीग कर जाड़ा हटाने के लिए जोर-जोर से गाते हुए हम लोग राहला पहुँचे और वहाँ के दो कमरे के पी.डब्ल्यू.डी. के बँगले में भूमि पर बैठने की जगह बना कर साथ लाये हुए आलू के पराठों पर टूट पड़े, तभी मुझे उन नवागन्तुक की प्रतिभा का अनुमान हुआ और अगले दिन के लिए फिक्र भी। पहाड़ों के ठण्ड के कारण भूख बहुत लगती है और जो सामग्री हम लोग लाये थे, वह समाप्तप्राय हो गयी थी।

हमारी पार्टी में दो जनों के पास कैमरे थे। हमने तय किया कि सबेरे चार बजे उठकर चल देंगे ताकि सूर्योदय के समय रोहतंग पर पहुँच जायें। हमारा अनुमान था कि उस समय का दृश्य फोटो के लिए बहुत अच्छा होगा।

लेकिन सबेरे साढ़े तीन बजे बाहर निकले तो दाँत बजने लगे - इतने कड़ाके की सर्दी थी। हम लोगों को और कोई उपाय तो सूझा नहीं, दो-दो आउंस ब्रांडी दोनों ने पी ली और चल दिये। ब्रांडी ने पहले तो मदद की। कुछ गर्मी आयी, पहली चढ़ाई तो हम आसानी से चढ़ गये। लेकिन 11 हजार फुट की ऊँचाई पर जाकर उसका विपरीत असर हमें मालूम होने लगा। ब्रांडी की यह सिफत है कि थकान या गिरती हालत में तो उत्तेजना देती है, लेकिन पहले पीने के बाद परिश्रम करने से बहुत सख्त 'डिप्रेशन' होता है। यही 'डिप्रेशन' उस समय प्रकट हुआ, साथ ही ऊँचाई का असर भी हुआ, मितली होने लगी। दो रातों का उनींदा और दो समय का उपोषण 'अनर्था बहुली' वाली बात हुई। 12 हजार फुट की ऊँचाई पर बर्फ मिली। पहाड़ की एक गली या दरार में बर्फ का पुल बना हुआ था। उसके नीचे पानी बह रहा था। ऊपर से रास्ता था। यह पार करने के बाद तो चलना कठिन हो गया, कैमरे का बोझ भी असह्य जान पड़ने लगा। किसी तरह हम लोग रुक-रुक कर चढ़ते गये।

भूख तो शायद नहीं लगी थी, लेकिन यह सोचकर कि इस कष्ट का कारण भोजन की कमी भी हो सकता है, मेरे साथी ने एक राह चलते लाहुली से खाने को कुछ माँगा। उसके पास केवल एक अधपकी मोटी-रोटी, एक-दो प्याज थे, उसने मुस्करा कर वे साथी को दे

दिये। उससे और भी बुरी हालत हुई।

किसी तरह चोटी के निकट पहुँच ही गये। एक और चट्टान की आड़ में बर्फ बिछी हुई थी। हम वहीं रुक गये और कैमरे के स्टैण्ड से बर्फ पर नाम खोदने लगे। मैं बड़े-बड़े अक्षरों में अपना नाम खोद चुका, तब स्टैण्ड अपने साथी को दे कर आगे बढ़ा। रोहतंग जोत की चोटी पर राह से कुछ दूर हट कर व्यास-कुण्ड है, जहाँ एक छोटे सोते को दीवार से घेर कर मंदिर-सा बना लिया गया है। मैंने वहाँ पानी पिया, फिर धूप सेंकने के लिए लेट गया - तब रोहतंग की प्रसिद्ध हवा चलने लगी थी। नित्य ठीक दोपहर को यह चलती है और इतनी घातक है कि ''मौत की घाटी'' नाम का मुख्य श्रेय उसी को है। लेट कर मैं उठ नहीं सका। मेरा शरीर ऐंठ गया, चक्कर आने लगे। सब कुछ नीला, नीला दीखने लगा..... न जाने कब तक मैं प्रतीक्षा में पड़ा रहा कि साथी आ जायें, लेकिन (यह पीछे मालूम हुआ) वे जोत पर मुझे न पाकर यह समझ बैठे कि मैं दूसरी पार उतर गया हूँ और मील-भर नीचे चले गये - जहाँ से फिर वापस चढ़ना उनके लिए संभव न हुआ। करीब दो घण्टे बीत गये। सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने लगीं और उनमें गर्मी का लोप होने लगा..... मैं किसी तरह उठकर बैठा, फिर खड़ा हुआ, लेकिन जब कैमरा लेने के लिए झुका फिर बैठ गया।

और तब मुझे एकाएक निश्चय हो गया कि मैं अब वहाँ से नहीं उठूँगा - वहीं रह जाऊँगा। मेरी पार्टी के बाकी लोग अब तक अवश्य जोत देखकर लौट गये होंगे - तीन बजे के बाद कौन ठहरता है? अब कोई उधर कुण्ड की ओर नहीं आयेगा ..... कल - लेकिन एक रात यहाँ काट कर क्या मैं कल के लिए रह जाऊँगा?

आँखें और भी निकम्मी हो गयी थीं- सब कुछ नीला काँपता हुआ-सा दीखता था। मैं आँखें बन्द करके सोचने लगा - अगर मेरे साथी न आये, तब कल मुझे देखकर पहचानेगा भी कौन? मेरे साथी तलाश करेंगे - लेकिन कहाँ पर? मुझे याद आया कि बर्फ पर मैं अपना नाम लिख आया था - उन्होंने अवश्य देखा होगा ..... लेकिन उससे अनुमान तो नहीं होगा कि मैं कहाँ हूँ- उससे केवल यही जाना जा सकेगा कि 'मैं था'..... और दो-तीन दिन बाद सूर्य की धूप उस चिन्ह को भी मिटा देगी - बर्फ का वक्षःस्थल फिर किसी और की लिखत के लिए उतना ही साफ-स्वच्छ हो जायेगा। न जाने क्यों, मुझे यही बात एक भावी दुर्घटना-सी जान पड़ने लगी कि मेरा नाम वहाँ से मिट जायेगा।

मुझे याद आया कि जब लाहौर में अपनी गैर-कानूनी कार्रवाइयों के कारण मुझे एक दिन सहसा घर से गायब होना पड़ा था, तब पुलिस से बचकर निकल जाने, मित्रों को सूचना देने, आगे का प्रबंध करने के बाद जब मैं स्टेशन पहुँचकर रेलगाड़ी में बैठ गया और फुरसत में सोचने लगा तब पहला विचार जो मेरे मन में आया वह था कि मेरे नये-नये छपाये हुए विजिटिंग कार्ड अब बेकार हो जायेंगे - क्योंकि अब अपने असली नाम का तो मैं उपयोग ही नहीं कर सकूँगा। चार बजे एकाएक सारा दृश्य बदल गया। मैंने अर्ध-चेतना की अवस्था में पास कहीं गाने की आवाज सुनी, किसी तरह उठा, पुकारने की व्यर्थ कोशिश करता हुआ लड़खड़ाया, लेकिन फिर बैठते-बैठते मैंने देखा कि नवागन्तुक ने मुझे देख लिया है। मेरे सौभाग्य से वह लाहुल के सिविल सर्जन निकले जो नीचे लौट रहे थे और उनके उपचार से मैं उठ सका। उन्होंने आग्रह किया कि मैं उनके साथ चलूँ, लेकिन उनसे पायी हुई पेपरमिन्ट की टिकियों के पैकेट के लिए धन्यवाद देकर मैं अपनी राह चला।

और कहने को कम है - क्योंकि मैं बच गया। मृत्यु का सामना करने का मेरे लिए यह पहला अवसर नहीं था, न अंतिम। छह बार अपने को मृत्यु को समर्पित करके और फिर जी कर मैंने यही जाना कि जब आदमी अपना नहीं रहता, अपने को दे डालता है, तब एक मोह जो वह नहीं छोड़ पाता वह है स्थायित्व का, जारी रहने का - दूसरे शब्दों में अपने नाम का मोह। मनोवैज्ञानिक जो मूल प्रेरणाओं में से एक इस स्थापित चेष्टा को गिनते हैं, वह उचित ही है। बल्कि वही सबसे मूल प्रेरणा है, उसी पर मानव का अस्तित्व, प्रकृति का अस्तित्व कायम है। डर, प्रेम और भूख भी जब छूट जाते हैं, तब भी मानव को अपने आप को कायम रखने की लालसा बनी रहती है। अपनी जाति को बनाये रखना, अपने को बनाये रखने का दूसरा नाम है। इस प्रकार यह स्थायित्व चेष्टा वास्तव में सृजन की चेष्टा है। एक जीवन में पकड़ पाने के लिए यह एक सत्य बहुत काफी है कि जब सब लालसाएँ झड़ जाती हैं - जब मानव पशुता की भी और फिर मानवता की भी केंचुल उतार फेंकता है, तब उसके भीतर जो बना रहता है, वह वह है जो नित्यता चाहता है, जो नष्ट होते हुए भी नया सृजन करना चाहता है - जो नश्वर होकर भी ईश्वर है। इससे बढ़कर भी कोई सत्य मौत की इस घाटी में जाना जा सकता है, यह नहीं दीखता। ✸

देह-धंधा व बलात्कार

❐ ओम प्रकाश शर्मा

यह धंधा और यौन उत्पीड़न-बलात्कार दोनों में शारीरिक जननेन्द्रिय और उसका चरम सुख प्रमुख रहता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक में स्त्री का वर्चस्व तो दूसरे में पुरुष का जोर चलता है। स्त्री की देह का कारोबार विश्व के सभी देशों में तथा सभी कालों में भिन्न-भिन्न रूपों में विद्यमान रहा है, इसीलिए इसे एक आवश्यक बुराई भी कहा जाता है। इस बुराई के नए संस्करण को लाइसेंस देने की माँग भी की जा रही है। आधुनिक भारतीय समाज में जहाँ परंपरागत वेश्यावृत्ति का धंधा चल रहा है, वहीं देह व्यापार का नया रूप कॉल गर्ल्स के रूप में सामने आया है। प्राचीन शास्त्रों में वेश्या को स्वतंत्र नारी कहा गया है। एक अनुमान के अनुसार, भारत में करीब 50 लाख परंपरागत वेश्याएँ इस समय हैं, जिनमें से एक चौथाई नाबालिग हैं। दिल्ली का जी.बी. रोड, कलकत्ता का सोनागाछी, मुम्बई का कमाठीपुरा और हैदराबाद का महबूब की मेंहदी आदि स्थानों के अतिरिक्त चेन्नई, वाराणसी, हरिद्वार, ऋषिकेश, मुजफ्फरपुर, भुवनेश्वर, अमृतसर, अजमेर जैसे अनेकानेक स्थानों पर यह धंधा फल-फूल रहा है। सरला मुद्गल ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि ''गरीबी, अंधविश्वास, धार्मिक रूढ़िवाद, दहेज प्रथा, शिक्षा का अभाव, बेरोजगारी और बेटे-बेटी में भेदभाव के कारण यह धंधा फल-फूल रहा है। नैतिकता का पतन, ब्ल्यू फिल्में, अश्लील साहित्य, नशीले पदार्थों की लोकप्रियता और उनकी सहज उपलब्धता तथा शहरों में रोजगार के लिए दूर-दराज से आने वाले लोग भी इस पेशे को बढ़ावा देते हैं। नवधनाढ्य वर्ग की पर नर-नारी भोग की लिप्सा ने भी नए ढंग के चकला घरों को आबाद कर रखा है। इसके साथ ही परिश्रम किए बिना एवं किसी पूँजी निवेश के बिना आसान तरीके से बड़ी रकम कमा लेने की लालच भी वेश्यावृत्ति के बने रहने का कारण है।'' दक्षिण भारत में आज भी देवदासी प्रथा के रूप में देवी और देवता के नाम पर आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए देवालयों में भेजी गई कन्याओं को वहाँ के पंडे और पुजारी द्वारा भगवान के नाम पर भोग करने की खबरें आती रहती हैं।

नैतिकता का पतन, ब्ल्यू फिल्में, अश्लील साहित्य, नशीले पदार्थों की लोकप्रियता और उनकी सहज उपलब्धता तथा शहरों में रोजगार के लिए दूर-दराज से आने वाले लोग भी इस पेशे को बढ़ावा देते हैं। नवधनाढ्य वर्ग की पर नर-नारी भोग की लिप्सा ने भी नए ढंग के चकला घरों को आबाद कर रखा है। इसके साथ ही परिश्रम किए बिना एवं किसी पूँजी निवेश के बिना आसान तरीके से बड़ी रकम कमा लेने की लालच भी वेश्यावृत्ति के बने रहने का कारण है। दक्षिण भारत में आज भी देवदासी प्रथा के रूप में देवी और देवता के नाम पर आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए देवालयों में भेजी गई कन्याओं को वहाँ के पंडे और पुजारी द्वारा भगवान के नाम पर भोग करने की खबरें आती रहती हैं।

पहले देह व्यापार काफी चोरी-छुपे होता था, जहाँ जाने वाले भी काफी बचकर जाते थे। इसके लिए एक स्थान जिसे लालबत्ती इलाका यानी रेड लाइट एरिया कहा जाता है, नियत था। वहाँ देह धंधा करने वाली वेश्याओं की अपनी विशेषता होती थी, पर आजकल यह सब गायब है। सिर्फ पैसे की चाहत और काम की भूख मिटाने की भावना कार्य कर रही है। सरला मुद्गल के अनुसार, ''पहले गणिका, वेश्या एक बाजारू, पर सर्वगुणसंपन्न नारी थी। कला, साहित्य, तहजीब और बातचीत की कला की वह देवी थी। बाजार में उसकी वजह से रौनक थी; परंतु आज सब कुछ समाप्त हो गया है। बाजार है; परंतु उसे गुलजार रखने वाली कलावंत रसिका, हुस्न की मलिका तवायफ वहाँ से गायब है। वहाँ आज मौजूद है तन का सौदा कर पैसा बटोरने वाली वेश्या।'' इस धंधे को कहीं पर्यटन उद्योग के नाम पर, तो कहीं

इस धंधे को कहीं पर्यटन उद्योग के नाम पर, तो कहीं दलालों और पुलिस की मिलीभगत से बढ़ाया गया है। अब इसके लिए कोठे-चकलाघरों की अनिवार्यता नहीं रह गई है। आज की अतिरेकवादी नारीवादियों का एक वर्ग देह व्यापार को स्त्री स्वतंत्रता की प्रवृत्ति के रूप में देखता है यानी अब यह पेशा मजबूरी में अपनाया जाने वाला व्यवसाय न रहकर मौज-मस्ती और चकाचौंध भरी जिंदगी जीने की चाहत को पूरा करने का स्वैच्छिक सौदा हो गया है। यह आज की बाजारू संस्कृति की उपज है, जहाँ कॉल गर्ल्स न तो उतनी बुरी है और न ही उससे प्राप्त होने वाला यौन सुख और पैसा अपवित्र है। होटलों, पार्लरों, मालिश घरों, नृत्यगाहों जैसी सभ्य संस्थाओं की आड़ में इसे सुनियोजित ढंग से बसाया-बढ़ाया जाता है। स्त्रियों और पुरुषों में मर्जी या जबरन थापे जाने वाले काम-सुख लूटने-लुटाने के लिए अवैध, अनैतिक संबंध बनते हैं।

दलालों और पुलिस की मिलीभगत से बढ़ाया गया है। अब इसके लिए कोठे-चकलाघरों की अनिवार्यता नहीं रह गई है। आज की अतिरेकवादी नारीवादियों का एक वर्ग देह व्यापार को स्त्री स्वतंत्रता की प्रवृत्ति के रूप में देखता है यानी अब यह पेशा मजबूरी में अपनाया जाने वाला व्यवसाय न रहकर मौज-मस्ती और चकाचौंध भरी जिंदगी जीने की चाहत को पूरा करने का स्वैच्छिक सौदा हो गया है। यह आज की बाजारू संस्कृति की उपज है, जहाँ कॉल गर्ल्स न तो उतनी बुरी है और न ही उससे प्राप्त होने वाला यौन सुख और पैसा अपवित्र है। होटलों, पार्लरों, मालिश घरों, नृत्यगाहों जैसी सभ्य संस्थाओं की आड़ में इसे सुनियोजित ढंग से बसाया-बढ़ाया जाता है। स्त्रियों और पुरुषों में मर्जी या जबरन थोपे जाने वाले काम-सुख लूटने-लुटाने के लिए अवैध, अनैतिक संबंध बनते हैं। इधर सुनने में आ रहा है कि पुरुष भी 'जिगोलो' के रूप में वेश्यावृत्ति करने लगे हैं।

पिछले कुछ वर्षों से पुलिस व दलालों से मुक्त कराने तथा वेश्याओं पर उचित निगरानी रखने के नाम पर देह-व्यापार को कानूनी मान्यता देने की माँग उठी है। कहा जा रहा है कि लाइसेंस से वेश्याओं को संगठन बनाने और सामान्य नागरिक के बराबर माने जाने में सहूलियत मिलेगी, जबकि वास्तविकता कुछ और है। राजकिशोर के शब्दों में, ''वेश्यावृत्ति को लाइसेंस देने की बात करना वस्तुतः इस सामाजिक बुराई से संघर्ष किए बिना ही हार मान लेना है। यदि लाइसेंस देने की बात है तो स्त्री को सम्मान के साथ काम करने का लाइसेंस दीजिए। हर औरत-मर्द को सम्मानजनक रोजगार का अधिकार दीजिए और पूरी सामाजिक सुरक्षा मुहैया कराइये, तब देखिए कि वेश्याओं का बाजार बना रहता है या प्राचीन काल के गुलामों के बाजार की तरह गायब हो जाता है। देह-व्यापार को लाइसेंस देने का अर्थ है पुरुष को स्त्री शरीर में प्रवेश करने का पासपोर्ट देना। फिर तो चोरों, उचक्कों, लुटेरों और बलात्कारियों को भी लाइसेंस मिलना चाहिए।'' वस्तुतः जहाँ इक्कीसवीं सदी को महिलाओं की सदी के रूप में मनाने का लक्ष्य व्यक्त किया गया है, वहाँ यह सब निर्बाध गति से चलना न तो स्त्रीत्व के सम्मान के अनुकूल है और न ही पूरे समाज और संस्कृति की श्रेष्ठता के उपयुक्त है। अतः इसका समूल उन्मूलन करने का उपाय ढूँढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि यह प्राचीन और परंपरागत बुराई होते हुए भी धर्म, संस्कृति और मानवता का घोर अपमान है। निश्चित रूप में समाज में चाहे स्त्री हों या पुरुष, यह दोमुँहापन नहीं चलना चाहिए कि एक तरफ हम देह-धंधे के प्राचीनतम व नवीनतम रूपों को घृणित रूप में देखकर आलोचना करें और दूसरी तरफ इसे छुपे-खुले तरह-तरह से चलाते भी रहें और इससे लाभान्वित होकर आह्लादित भी होते रहें। इस दोमुँहापन से बेहतर तो वेश्वावृत्ति को लाइसेंस देना ही होगा?

यौन उत्पीड़न और बलात्कार

देह का सौदा तो फिर भी स्त्री की इच्छा पर निर्भर करता है; परंतु यौन शोषण और बलात्कार स्त्री की इच्छा के विरुद्ध पुरुष की पाशविकता के कारण संपन्न होते हैं। जहाँ बलात्कार कुछ क्षण में ही स्त्री की जीवन धारा को मोड़ देता है, वहीं यौन उत्पीड़न ऐसी सुदीर्घ चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें बलात्कृत घुट-घुट कर अपमानित होते-होती हैं। घर की चहारदीवारी और बाहर की जिम्मेवारी संभालने के साथ ही कार्यस्थल पर महिलाओं का तरह-तरह से यौन शोषण किया जाता है। 13 अगस्त, सन् 1997 ई. में सर्वोच्च न्यायालय ने बहुचर्चित भँवरी देवी कांड पर फैसला सुनाते हुए कार्यालयों और अन्य स्थानों पर अपमानजनक व्यवहार रोकने के लिए व्यापक दिशा-निर्देश जारी किए, जिसके तहत यौन उत्पीड़न रोकने की मुख्य जिम्मेवारी नियोक्ता की तय की गई है। अभद्र व्यवहार, शारीरिक संपर्क, यौन संबंधी माँग, अश्लील शाब्दिक अभिव्यक्ति, गलत इशारा करना तथा अश्लील चित्र दिखाना आदि को यौन उत्पीड़न का उपक्रम कहा गया है। ऐसी स्थिति में नियोक्ता द्वारा शिकायत समिति का गठन तथा उसका प्रमुख किसी महिला को बनाए जाने का सुझाव दिया गया है।

यौन उत्पीड़न से पीड़ित के लिए चुपचाप सहने के सिवा विवाद का विषय बनाने पर उसे पारिवारिक विरोध, सामाजिक उपेक्षा, आर्थिक हानि तथा चरित्र हनन जैसी दुस्सह स्थितियों से गुजरना पड़ता है। नौकरी से हाथ धोना तथा घोर मानसिक यातना से जूझना पड़ता है। इसके बाद भी न्यायालय में जाने पर यह निश्चित नहीं कि न्याय मिल ही जाएगा। स्त्रियों की भागीदारी हर क्षेत्र में बढ़ने के साथ निरंतर ऐसी घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। ऐसे में अपनी इच्छा तथा स्वतंत्रता से काम करने के अधिकारों का हनन होता है। कई बार वह इन स्थितियों में बुरी तरह फँस जाती है। इस आसान रास्ते में फँस जाने के बाद वहाँ से निकलना मुश्किल होता है। इस मामले में भय और असुरक्षा का वातावरण चारों ओर बढ़ रहा है - घर परिवार

अदालत ने एक यौन उत्पीड़ित कंपनी सचिव की याचिका को खारिज करते हुए कहा कि जो आरोपी है, वह यदि सचमुच अपने 'लगाव की वस्तु' से प्यार करता है, तो उसे यौन उत्पीड़न का दोषी नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर वह जो लगाव की वस्तु है, को नौकरी गँवानी पड़ी। इस फैसले ने मीडिया को उत्तेजित किया, जो स्वाभाविक था, क्योंकि तब तो कोई भी व्यभिचारी स्त्री-पुरुष यह कह सकता है या कह सकती है कि उसने प्यार में पागल होकर ऐसा कृत्य किया है। जाहिर है कि सद्चरित्र जन चाहे स्त्री हों या पुरुष, काम करने की स्वतंत्रता के साथ सामाजिक स्वीकृति की सहजता प्राप्त नहीं कर पाए हैं।

से लेकर नातेदारी-रिश्तेदारी तक तथा बस से लेकर दफ्तर तक। इस संदर्भ में इटली की एक अदालत ने कुछ ही वर्ष पहले बड़ा विचित्र फैसला दिया, जिसका उल्लेख अप्रासंगिक नहीं है। अदालत ने एक यौन उत्पीड़ित कंपनी सचिव की याचिका को खारिज करते हुए कहा कि जो आरोपी है, वह यदि सचमुच अपने 'लगाव की वस्तु' से प्यार करता है, तो उसे यौन उत्पीड़न का दोषी नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर वह जो लगाव की वस्तु है, को नौकरी गँवानी पड़ी। इस फैसले ने मीडिया को उत्तेजित किया, जो स्वाभाविक था, क्योंकि तब तो कोई भी व्यभिचारी स्त्री-पुरुष यह कह सकता है या कह सकती है कि उसने प्यार में पागल होकर ऐसा कृत्य किया है। जाहिर है कि सद्चरित्र जन चाहे स्त्री हों या पुरुष, काम करने की स्वतंत्रता के साथ सामाजिक स्वीकृति की सहजता प्राप्त नहीं कर पाए हैं। स्त्री अच्छा-अच्छा कार्य करते हुए अपने पुरुष कर्मचारियों-अधिकारियों के लिए सर्वप्रथम 'महिला' ही रहती है; इसलिए उसकी हर अच्छाई-बुराई को उसके महिला होने से जोड़कर देखा जाता है।

असहमति या जबरन सहमति से जब यौन-संबंध बनाया जाता है या बनाने का प्रयत्न किया जाता है, वह चाहे तात्कालिक हो या दीर्घकालिक तो वह बलात्कार है। दंडित करने के लिए, सबक सिखाने के लिए या कामोत्तेजना को मिटाने के लिए यह दुष्कर्म होता है। आधुनिक जीवन पद्धति की असंवेदनशीलता ने इसे बढ़ा दिया है। इंसानियत के सारे पवित्र संबंध भस्मीभूत होते जा रहे हैं। यह एक ऐसा क्रूर कर्म है तो जिसमें दोषी तो बलात्कारी होता है और सामाजिक सजा बलात्कृत को मिलती है। उसे ही अपराधी मानकर परिजन तथा समाज के लोग, यहाँ तक की पुलिस भी अपनी करतूत दिखाती है। यह माना जाता है कि बलात्कार से शील भंग हो गया, पवित्रता नष्ट हो गई। स्वयं बलात्कृत भी इस हीनता से उबर नहीं पाती या पाता। शारीरिक क्षति से ज्यादा मानसिक विकारों से ग्रस्त होकर आत्म-हत्या तक होती है। समाज का यही दोहरा मानदंड है कि पीड़ित को सब ओर से दंड मिले तथा अपराधी सीना तानकर घूमें। यहाँ यह अपेक्षा है कि बलात्कार को अपने साथ संभव न होने देने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी जाए, यानी की जिंदगी उसकी यौनिकता के साथ जुड़ी है और यही वर्ग उसकी यौन-पवित्रता नष्ट भी करता है। राजकिशोर ने ठीक ही लिखा है कि ''हिन्दी में हाल तक बलात्कार को शील भंग ही लिखा जाता था। आश्चर्य यह है कि किसी भी पत्रकार की नजर इस तरफ नहीं गई कि बलात्कार के दौरान स्त्री का शील टूटा या पुरुष का। जब तक पवित्रता उसके यौन अंगों के संदर्भ में देखी जाती रहेगी, तब तक बलात्कारी को लगेगा कि वह एक खास काम कर रहा है। यौन अंगों की यह तानाशाही टूटनी चाहिए।'' हालाँकि बलात्कार के लिए मृत्युदंड का प्रावधान करने की जरूरत व्यक्त की जा रही है, लेकिन नारीवादियों ने इसे भी नकार दिया है और यह कहा है कि इससे तो हर बलात्कारी-अपराधी बलात्कार के उपरांत बलात्कृत को जान से मार देगा - मृत्युदंड के भय से। मृत्युदंड तो बलात्कार के लिए और जान मारने के लिए भी एक ही साथ होगा - यदि होगा भी तो। आर्थिक मुआवजा दिया जाना भी बलात्कार की कीमत आँकना भर होगा, जो अनुचित है। बलात्कारी को सामाजिक-राजनीतिक दंड मिलना चाहिए, क्योंकि वह तो जान-बूझकर ऐसा कुकृत्य करता है, जबकि पीड़ित के लिए किसी भी प्रकार न रोक पाने की स्थिति में यह संभव होता है। जाहिर है कि दोषी-अपराधी को ही सजा देनी चाहिए। ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण करने का सार्थक प्रयास करना चाहिए, जिससे ऐसी दुष्प्रवृत्ति को अधिक पसरने से रोका जा सके। स्त्री-पुरुष, प्रशासन व पुलिस जो भी ऐसी कुप्रवृत्ति को बढ़ाए, उन्हें दंडित किया जाना चाहिए। आधुनिकता के नाम पर, यौन स्वछंदता के नाम पर किसी का किसी से काम संबंध की कामना करना और ऐसा कार्य करना किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता है। ✸

❒ गीता सिंह

कलसाजी, धोखाधड़ी, ठगी व स्वार्थ से ओत-प्रोत रिश्ते के युग में प्यार को पा लेना बड़ा मुश्किल है। प्यार रूपी कमल इतना सुखद अनुभूति देता है जिसकी व्याख्या कोई कलम व शब्द नहीं कर सकता। जज्बात के जिस चासनी में डुबो कर खट्टे व कड़वे रिश्ते भी मधुर हो जाते हैं, उसको हमने अपनी-अपनी करनी से ऐसे-ऐसे चिथड़े पहनाया है कि लोग प्यार शब्द से दूर भागने लगे हैं। उसे किसी ताख पर रख सिर्फ रिश्ते की ऐसी बिरयानी तैयार की जाती है जिसमें सब रंग व सब्जियाँ तो नजर आती हैं, पर खुशबू नहीं होती। प्यार को लोगों ने अपने मकसदों व मतलबों के लिए ऐसे जलील व बदनाम किया कि इसको मुँह छुपाने तक की जगह नहीं है।

जरा-सी अहम की आँधी टकराई नहीं कि प्यार में जीने-मरने की कसमें खाने वाले लोग एक दूसरे की जान तक ले लेते हैं। कभी कोर्ट में, कभी गली-मुहल्ले, शहर व कभी-कभी तो पूरी दुनिया के सामने इसे अपराधी बना सूली पर झूला दिया जाता है। प्यार (मुहब्बत) रूपी शरीर वफा के जिस खुराक से ताउम्र जिन्दा रहते हुए मरने के बाद भी मिसाल बन जाया करता था, अब वो खुराक देनी ही बंद कर दी गई है। इसमें अब नफरत, बदले व स्वार्थपन का जहर मिल चुका है। कल जो संबंध कई कई युगों तक लोगों को याद रहते थे, आज वही प्यार बदनाम गलियों में धूल-धूसरित औंधे मुँह गिरा है। आज प्यार बदले के लिए, टाइम पास के लिए, जायदाद हेतु तथा शारीरिक भूख मिटाने का जरिया बन चुका है।

लोग प्यार करने से पूर्व घाटे-मुनाफे का जायजा लेने लगते हैं। कल लोगों का प्यार चलते-फिरते हो जाता था और तब भी इतना सहेज कर रखते थे कि किसी की नजर न लगे, प्यार बदनाम न हो और हर संभव प्रयास किया जाता था कि जोड़ा हंस बिछड़े न। संगी साथी सब मिलाने का प्रयास करते थे। जीवन के इस अनमोल पल को ऐसे कैद करते थे कि दोनों एक दूसरे के पूरक नजर आते थे। अनायास बने संबंध में पूरी जिन्दगी साथ होते थे।

आज ठीक इसके विपरीत प्यार करने से पूर्व पूरा अता-पता किया जाता है। पार्टनर सुन्दर स्मार्ट हो, अच्छे ओहदे पर, अच्छे घर से हो। इतना ही नहीं, उसकी रुचि-अरुचि जानने के अतिरिक्त ऐसी बहुत सी बातें हैं जो जानना अतिआवश्यक नहीं होता, उन्हें भी जान लिया जाता है; किंतु इतनी जानकारी प्राप्ति के बाद प्यार कुछ ही दिनों बाद टूट जाता है और फिर एक नये पार्टनर की तलाश शुरू होती है। रिश्ते में अगर ठहराव न हो, भावनाओं की गर्माहट न हो तो उसमें प्यार कहाँ से अंकुरित हो पाएगा।

आज मुहब्बत जैसे पाक रिश्ते का कुछ चन्द भेड़ियों ने ऐसे बलात्कार किया है कि प्यार होने का मतलब समाज न जाने कैसे-कैसे लगाने लगता है। प्यार की डोर थामे जो लोग कठिनाइयों की ऊँची से ऊँची चोटी पार कर जाते थे, मंजिल के पहले कोई भी राह नहीं भटकता था। आज वह डोरी गले का फंदा बनने लगी है।

प्यार रूपी बंधन आज फैशन बन चुका है। आज गर्ल फ्रेंड, ब्वॉय फ्रेंड प्यार के दो ऐसे कबूतरी व कबूतर हैं जिनके लिए न तो घर चाहिए, न शादी के बंधन की जरूरत होती है और न ही लोक लाज। इनके लिए प्यार जीवन भर का सफर नहीं बल्कि चन्द घंटों व मिनटों में जी भर लुटने वाला व मौज मस्ती बटोरने का जरिया है। बाद में परिणाम चाहे जितना भी जायज व नाजायज हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क तब पड़ता है जब इसकी अश्लील फिल्म व तस्वीरें दुनिया के सामने आने लगती हैं। यह उचित नहीं है कि दुनियाँ का कोई भी इंसान प्यार रूपी गुलाम के सुन्दर एहसास से वंचित रहे, क्योंकि सुन्दर-कुरूप, अमीर-गरीब, राजा-रंक हर कोई को इस रिश्ते में एक बार अवश्य

प्यार रूपी बंधन आज फैशन बन चुका है। आज गर्ल फ्रेंड, ब्वॉय फ्रेंड प्यार के दो ऐसे कबूतरी व कबूतर हैं जिनके लिए न तो घर चाहिए, न शादी के बंधन की जरूरत होती है और न ही लोक लाज। इनके लिए प्यार जीवन भर का सफर नहीं बल्कि चन्द घंटों व मिनटों में जी भर लुटने वाला व मौज मस्ती बटोरने का जरिया है। बाद में परिणाम चाहे जितना भी जायज व नाजायज हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क तब पड़ता है जब इसकी अश्लील फिल्म व तस्वीरें दुनिया के सामने आने लगती हैं। यह उचित नहीं है कि दुनियाँ का कोई भी इंसान प्यार रूपी गुलाम के सुन्दर एहसास से वंचित रहे, क्योंकि सुन्दर-कुरूप, अमीर-गरीब, राजा-रंक हर कोई को इस रिश्ते में एक बार अवश्य बँधना चाहिए; किन्तु इसमें काँटे भी हैं, इसकी समझ होनी चाहिए।

बँधना चाहिए; किन्तु इसमें काँटे भी हैं, इसकी समझ होनी चाहिए। प्यार जहाँ जिन्दगी देता है, वहीं कई जिन्दगियाँ बर्बाद व तबाह भी कर देता है। प्यार की पवित्रता की आड़ में लूटी गई उन लड़के-लड़कियों और उनके माता-पिता से पूछिए कि उन्हें यह शब्द कैसा लगता है, आँखों से बहने वाले उन आँसुओं से जानिए कि उन्हें कैसा महसूस हुआ होगा जब पता चला होगा कि उनकी बेटी के प्रेमी ने उसकी हत्या कर दी है। तब नफरत व घृणा का जो ज्वालामुखी भभकता है, उसकी कल्पना भी बड़ा ही वीभत्स नजर आता है। कत्ल के शक्ल में प्यार, कितना बदसूरत लगता है।

आज प्यार इतना वेगमय हो गया है कि लोगों का प्यार एक जगह पर टीकता ही नहीं। प्यार का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। पहले जहाँ प्यार एक ओर सिर्फ एक से किया जाता था, वहीं आज यह बहुआयामी भी हो चुका है। बॉस का ऑफिस में प्रलोभन भरा प्यार, पति का घरवाली और बाहर वाली के लिए अलग-अलग प्यार, गर्ल फ्रेंड व ब्वॉय फ्रेंड वाला मसालेदार प्यार, क्लास मेट का नोट्स के अन्दर का लुका-छिपी वाला प्यार तथा लैला-मजनूँ का बदनामी भरा प्यार, बंटी व बबली का प्यार इतना ही नहीं, मधुबाला व दिलीप कुमार, रेखा-अमिताभ, धर्मेन्द्र व हेमामालिनी का प्यार आदि इतने रूप हैं कि पहचानना व समझना मुश्किल हो चुका है कि कौन सा प्यार ठीक है। आज सच्चा प्यार का कोई उदाहरण नजर नहीं आता। प्यार का दायरा तो निःसंदेह बढ़ चुका है। छोटी उम्र के बच्चे भी कैटरीना-सलमान व करीना-सैफ का फलसफा समझने लगे हैं। माँ-बाप का, भाई-भाई का, बहन-बहन का, दोस्त-दोस्त का प्यार आज अर्थविहीन होता जा रहा है।

आज प्यार जरूरतमंद हो चुका है। इसका सुरसा-सा मुँह इतना बढ़ चुका है कि रिश्तों को समेटना कठिन होता जा रहा है। प्यार में शर्मिलापन जहाँ उसकी जरूरत होती थी, नजरें झुकाना इकरार समझा जाता था, वहीं ये सब चीज अब प्यार में लोगों के लिए अड़चन लगने लगी है। आज शाश्वत प्यार को साबित करने हेतु जो अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है, उसमें सर्वप्रथम अपनी मर्यादाओं की बलि देनी पड़ती है और मर्यादाओं की बलि इतनी ही दी जाती है कि फिर देने के लिए कुछ नहीं बचता।

प्यार विश्वास का दामन छोड़ धोखा व अविश्वास को अपना चुका है। आज सच्चे प्रेम की न तो कद्र है, न पहचान-परख की सही कसौटी। आज हर काम हम भाग्य भरोसे करने लगे हैं, निबह गई तो बस निबह गई और बिगड़ गई तो चन्द लकीरों की कमी दिख जाती है। आज हर युगल जोड़ी अपने प्यार को फिल्मी अंदाज में तीन घंटे में ही मंजिल तक पहुँचा देना चाहता है। उन पर फिल्मी दुनियाँ का ऐसा प्रभाव होता है कि हर काम उसी अंदाज में करेंगे, चाहे मिलना हो, प्रपोज करना हो, डेट पे ले जाना हो अथवा शादी करनी हो। यहाँ तक की बहुत बार वो सारी मर्यादाओं के बाँध भी शौकिया तौर पर टूट जाते हैं जो फिल्मों में सिर्फ कृत्रिम होता है। कभी-कभी बिन सोचे-समझे ऐसे-ऐसे कदम उठा लिये जाते हैं जिनसे उन दोनों का भविष्य पूरी तरह अंधकारमय हो जाता है। समाज तथा परिवार को इन्हें जवाब देना पड़ता है। इज्जत, अस्मिता, नाम, व्यवसाय व नौकरी मिट्टी में मिल जाती है। जिस साथी ने प्यार का वास्ता देकर अपनी रातों को रंगीन करने पर मजबूर किया था, कसमें देकर हम-बिस्तर हुआ था, वही एमएमएस बना कर दुनियाँ के सामने ऐसे दागदार करेगा कि दुनिया में मरने से आसान कुछ न होगा। ऐसा प्यार में पहले नहीं होता था।

आज हर युगल जोड़ी अपने प्यार को फिल्मी अंदाज में तीन घंटे में ही मंजिल तक पहुँचा देना चाहता है। उन पर फिल्मी दुनियाँ का ऐसा प्रभाव होता है कि हर काम उसी अंदाज में करेंगे, चाहे मिलना हो, प्रपोज करना हो, डेट पे ले जाना हो अथवा शादी करनी हो। यहाँ तक की बहुत बार वो सारी मर्यादाओं के बाँध भी शौकिया तौर पर टूट जाते हैं जो फिल्मों में सिर्फ कृत्रिम होता है। कभी-कभी बिन सोचे-समझे ऐसे-ऐसे कदम उठा लिये जाते हैं जिनसे उन दोनों का भविष्य पूरी तरह अंधकारमय हो जाता है।

वफा के बदले बेवफाई ये प्यार की रीत नहीं। प्यार का प्रतिफल मौत ये इश्क का जुनून नहीं। अमृत के बदले तेजाब यह मुहब्बत की पहचान नहीं। प्यार पाने का भी नाम नहीं। प्यार तो वो भोर है जहाँ दिलों के कमल इतनी सहजता से अंकुरित व प्रस्फुटित होते हैं कि किसी को इसकी भनक तक नहीं होती। ज्यों-ज्यों यह कमल विकसित होता है त्यों-त्यों उसमें सुदृढ़ता व प्रगाढ़ता भी बढ़ती है। वफा की आग अन्दर-अन्दर सुलगती है पर हवस से परे एक ऐसी दुनिया तैयार कर लेती है, जिसकी दीवारें अटूट होती हैं। इस रिश्ते में अगर कुछ क्षणभंगुर होता है तो वह है इनकी नाराजगी। लोग एक दूसरे की साँस से जीवित रहते हैं। जहाँ एक दूसरे की खुशी की, इज्जत की, चरित्र तथा जान की ताउम्र परवाह व हिफाजत की जाती है। प्यार किसी रंगीन रात का मुहताज नहीं होता। बिना किसी रिश्ते के नाम को भी जो बंधन कभी न टूटता है, नहीं बिखरता है वो है प्यार। इसमें इंसान को मदहोश करने वाली अजीज गमक होती है। यह वो रीत है जिसे निभाने के लिए किसी जटिलता व संस्कारों के पुलिंदे की भी जरूरत नहीं पड़ती। इसके लिए इंसान को सिर्फ दिल में थोड़ी जगह व आँखों में हया की जरूरत होती है। फूल न हो कोई बात नहीं, पर काँटों पर चलने की हिम्मत होनी चाहिए। इसे किसी की नकल करने की व फिल्मी साज-सज्जा की भी जरूरत नहीं होती क्योंकि यह स्वयं में इतना परिपक्व होता है कि किसी सहारे की जरूरत नहीं। इस एहसास को संयम के साथ महसूस किया तो आजीवन हमारे मन को गुदगुदाता रहेगा। विश्वास व वफा के आगोश में यह सदैव लहलहाता है। बंधन की गाँठ मजबूत होनी चाहिए, फिर हाथों में हाथ न भी हो, पर साथ नहीं छूटता। तभी लोग बचपन के साथी को जीवन के अंतिम क्षणों में भी याद करके ऐसे मचल जाते हैं और ऐसी ऐसी कविताएँ व गीत-शायरी व गजल गुनगुनाते हैं, जैसे कोई प्यार से मदमस्त गजगामिनी या गज पुरुष हो। ✸

यात्रा : अंदाज अपना अपना

❒ डॉ. ओम प्रकाश शर्मा

गतिशीलता सजीवता का प्रमाण है और जड़तापूर्ण स्थिरता चेतनहीनता या मृत्यु का प्रमाण। यद्यपि ब्रह्माण्ड अपनी व्यापकता में जड़-चेतन, चर-अचर, गोचर-अगोचर पदार्थों को समरस किए हुए है, तथापि प्रकृति का सौंदर्य चेतन-तत्वों से ही अधिक निर्दिष्ट होता है। प्राणी-मात्र में गतिशीलता के लिए शरीर के अनिवार्य अंग के रूप में पैर अवस्थित है। इसका मूल धर्म चलना है। निर्गुण ब्रह्म के लिए कहे 'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु करम करै विधि नाना' वाली उक्ति सरीसृप वर्ग के जीव साँप-केंचुआ आदि को छोड़कर आम जीवों पर लागू नहीं होती। यदि कभी प्राकृतिक प्रकोपों या आधुनिक मशीनी युग की विडंबनाओं का शिकार बनकर मनुष्य पैर-विहीन होने की दशा में चलता भी है, तो उसकी गति अमूमन मंद होती है।

साधारण ढंग से चलने, घूमने, टहलने, कूदने, दौड़ने का जब अपना महत्त्व है, तो उद्देश्यपरक लंबे प्रयाण का कितना महत्त्व होगा- यह शोचनीय है। घूमना जब उद्देश्यपूर्ण हो, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, तो 'यात्रा' बन जाता है और जब निरुद्देश्य हो तो भटकना कहलाता है। जरा सोचिए, यदि मनुष्य सहित बाकी जीव-जंतु चल-घूम न रहे होते तो क्या होता? उत्तर साफ है, कहीं कुछ नहीं होता, कोई नहीं होता। प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य वीरानगी में तब्दील हो गया होता।

अस्तु, जब अपनी स्वाभाविक चाल से दुनिया की दूरी तय करना असंभव प्रतीत हुआ तो गति-सीमा का विस्तार करने के लिए यान, जहाज, रथ, वाहन आदि का आविष्कार किया गया, जीव-जंतुओं का वाहन की तरह उपयोग किया जाने लगा। इससे भी जब पूरी दुनिया की यात्रा सहज नहीं हुई तो तपस्या-साधना से मिली मंत्रसिद्धि और ईश्वरीय वरदान द्वारा चलने की रफ्तार को लगभग मन की गति के बराबर पहुँचा दिया गया। पौराणिक युग में देवर्षि नारद को बिना वाहन के तीनों लोकों में विचरण करने की शक्ति प्राप्त थी। पृथ्वीलोक में रात को विश्राम न करने की लाचारी के एवज में भगवान परशुराम को तीव्र गति से महेंद्र पर्वत सहित सब जगह आने-जाने की सुविधा प्राप्त थी। रामायण-काल में रावण का पुष्पक विमान भी मन की गति के हिसाब से चलता था। कहने का मतलब यह है कि जल्दी से दुनिया की थाह पा लेना और विजय प्राप्त करने की आकांक्षा मनुष्य की खोजने-पाने की प्रवृत्ति के अनुरूप ही है।